स्वदेशी पत्रिका

वर्ष–20, अंक–2, माघ–फाल्गुन 2068, फरवरी 2012

संपादक
विक्रम उपाध्याय

कार्यालय
धर्मक्षेत्र, सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग
रामकृष्णपुरम, नयी
दिल्ली–110022
से प्रकाशित
दूरभाष : 011–26184595
स्वदेशी जागरण समिति की ओर से ईश्वर दास महाजन द्वारा कॉम्पीटेंट बाइन्डर्स (प्रिंटिंग यूनिट), नवीन शाहदरा, दिल्ली–32 से मुद्रित।

आवरण कथा-4

केंद्र सरकार लुभावने नारों के लिए मनरेगा और खाद्य सुरक्षा विधेयक की रट भले ही लगा रही हो, पर ग्रामीण क्षेत्र की भारी समस्या है। यह ऐसा समय है, जहां सरकार कई प्रकार की मजबूरियां गिनाकर विदेशी कंपनियों को उन क्षेत्रों में आने की इजाजत दे सकती है.

अनुक्रम

आवरण लेख

दोराहे पर खड़ा देश
बजट कितना पार लगाएगा बेड़ा
– विक्रम उपाध्याय /4

स्वदेशी संवाद

किसान विरोधी है : खुदरा में विदेशी निवेश
– डॉ. अश्विनी महाजन /7

जैव विविधता

बीज में छिपी है खाद्य संप्रभुता
– वंदना शिवा /10

कुपोषण

कुपोषण के मूल कारण
– देविन्दर शर्मा /12

अर्थव्यवस्था

आम आदमी बनाम उद्यमी
– डॉ. भरत झुनझुनवाला /15

समीक्षा

विकल्पों के लिए व्यापक आंदोलन
– भरत डोगरा /18

मुद्दा : नौकरशाही को कैसे सुधारे..?
– डॉ. वेद प्रताप वैदिक /21

विचार–विमर्श

भ्रष्टाचार, कालाधन और यारांना पूंजीवाद
– कमल नयन काबरा /23

पर्यावरण : शहर के पानी की बदबूदार कहानी
– सुनीता नारायण /26

चिंतन : धर्म राजनीति का गांधी दर्शन
– जगमोहन /29

प्रतिक्रिया : विकृत सेक्यूलरवाद
– बलवीर पुंज /31

स्वास्थ्य : सफलता की राह में कई रोड़े भी
– निरंकार सिंह /33

अभियान :

गंगा के संरक्षण पर और कितने बलिदान
– अरुण तिवारी /35

पाठकनामा/2, रपट/35, आंदोलन/36

पाठकनामा

किसान शक्तिशाली होंगे, तभी भारत शक्तिशाली होगा

भारत कृषि प्रधान देश है। यहाँ की 70 प्रतिशत आबादी गाँव में रहती है और खेती इनका प्रमुख व्यवसाय है। पर आज देश में किसानों की स्थिति दयनीय है। साल दर साल हजारों किसान बढ़ते कर्ज का बोझ वहन नहीं कर पाते और खुद को मार डालते हैं। चाहे यह फसल की विफलता हो, लागत में वृद्धि, बिचौलियों के हाथों शोषण हो, सबकी कहानी समान है। छोटे और सीमांत किसान कृषि से पलायन कर भूमिहीन मजदूर के रूप में काम कर रहे हैं। भारतीय कृषि भयावह संकट से गुजर रही है, किंतु इस पर सरकार जरा भी ध्यान नहीं दे रही है।

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार केवल एक वर्ष में ही 15,964 किसान आत्महत्या कर चुके हैं। आंध्र प्रदेश में भी 90 किसान अपनी जान गंवा बैठे है। अतः किसानों को उचित मूल्य मिले ताकि वह कृषि में लगी लागत से कहीं ज्यादा आय प्राप्त कर सकें। सरकार और समाज को किसान देवता की पूरी चिंता और सुरक्षा करनी होगी, तभी भारत शक्तिशाली देश बनेगा।

– राजेन्द्र सिंह ठाकुर, ग्वालियर

गरीब भारत को एकजुट होना होगा

आज देश में अमीरी और गरीबी की खाई में काफी अंतर आ गया है। अमीर पहले से ओर ज्यादा अमीर होते जा रहे है और गरीब पहले से ज्यादा गरीब होते जा रहे हैं। अगर हम दूसरे शब्दों में कहे कि एक अमीर भारत और एक गरीब भारत तो शायद किसी को ऐतराज नहीं होगा। अमीर भारत में पैसे, शान और शौकत, हवाई जहाज व गाड़ियों की कमी नहीं है। अमीर भारत वालों के पैसे स्विस बैंक में जमा होते हैं। पूंजीपतियों की विदेशों में कोठियां बन रही हैं। ये पूंजीपति लोग विदेशों में यह दिखा रहे हैं कि भारत किसी से कम नहीं है लेकिन वास्तविक स्थिति में यही पूंजीपति लोग भारत में गरीबों का शोषण ही करते हैं। जब विश्व के भ्रष्टाचार का आंकड़ा आया तो आंकड़े में पाया गया कि भारत भ्रष्टाचार में पहला स्थान रखता है। आज भारत के प्रत्येक सरकारी कर्मचारी से लेकर मंत्री तक भ्रष्टचार में लिप्त है। फोर्ब्स पत्रिका की दस अमीरों की लिस्ट में चार भारतीय प्रत्येक वर्ष होते है। क्या ये भारतीय कभी अपने गरीब भाईयों पर नज़र डालते हैं। इनका काला धन स्विस बैंक में पड़ा है लेकिन सरकार है कि इनके काले धन को देश में लाने को तैयार नहीं। अब तो गरीब भारत को एकजुट होना पड़ेगा तभी भारत में एक नयी क्रांति का जन्म होगा।

– मुकेश कुनियाल, सैक्टर–3, आर.के. पुरम् नई दिल्ली

आवश्यक नहीं कि इस अंक के भीतर प्रस्तुत लेखकों के विचार स्वदेशी पत्रिका के संपादक मंडल के विचारों से मेल खाते हों। पाठकों की जानकारी के लिए उन्हें यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

संपादकीय कार्यालय

"धर्मक्षेत्र" शिव शक्ति मन्दिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022
दूरभाष : 011–26184595 • ई–मेल : swadeshipatrika@rediffmail.com

अगर आप घर बैठे स्वदेशी पत्रिका चाहते हैं तो डिमांड ड्राफ्ट, मनीऑर्डर अथवा चेक द्वारा शुल्क *'स्वदेशी पत्रिका'* दिल्ली के नाम भेजने का कष्ट करें।

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 100 रुपए
आजीवन सदस्यता शुल्क: 1,000 रुपए

यदि शुल्क भेजने के उपरांत भी आपको पत्रिका समय पर उपलब्ध नहीं हो पा रही है तो तुरंत पत्रिका कार्यालय को सूचित करें।

(ध्यानार्थ : कृपया अपना नाम व पता साफ अक्षरों में लिखें)

उन्होंने कहा

राहुल गांधी काले धन पर जवाब क्यों नहीं देते है। वे विकास की बात करते हैं लेकिन इसके लिए पैसा कहां से आएगा।

– रामदेव बाबा

2–जी देश को डुबा देने वाला घोटाला है जिसने पूरे देश को लूटा है। इस पर आया सुप्रीम कोर्ट का फैसला ऐतिहासिक है जिसने सरकार को बेनकाब किया।

– उमा भारती

मैं भारत के उच्चतम न्यायालय पर गर्व करता हूं। जिसने कंपनियों के 122 लाइसेंस रद करने के लिए बहुत हिम्मत दिखाई। शाबाश स्वामी!

– चेतन भगत, लेखक

औद्योगिक उत्पादन सूचकांक यानी आइआइपी को बदलना होगा। इसमें तेजी से बढ़ रहे उद्योगों की तुलना में धीमी गति वाले उद्योगों का वजन अधिक है।

– आदि गोदरेज

भारत में अवैध रूप से रह रहे बांग्लादेशी न केवल यहां पर गंजे से जीवन व्यतीत कर रहे हैं, बल्कि भारतीय नागरिकों के अधिकारों और सरकारी सुविधाओं का भी भरपूर मात्रा में दोहन कर रहे हैं।

– अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश कामिनी लॉ

अगर प्रधानमंत्री वास्तव में कुपोषण से शर्मिंदा हैं तो उन्हें आर्थिक नीतियों में बदलाव कर इन्हें जनवादी और पर्यावरण अनुकूल बनाना होगा।

– देविन्दर शर्मा

इन चुनावों में कुछ मौलिक मुद्दे तो उठे

चुनाव पर्व सामने है। विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच जोर आजमाइश तेज है। मुद्दे छांटे जा रहे हैं। चुनाव रणनीतिकार समीकरणों को समझने, बनाने और बिगाड़ने में लगे हैं। इन सब के बीच एक सवाल सभी सजग लोगों के मन में उठता है, कि क्या विधानसभा के चुनाव वैसे ही होते आएंगे या फिर राजनीतिक दिशा को बदलने की कोई पहल होगी। ज्यादा नहीं कम से कम पंजाब और उत्तरप्रदेश के विधानसभा चुनाव में यह सवाल समिचीन तो है ही। पिछले दो तीन वर्ष में देश का राजनीतिक माहौल ज्यादा दूषित हुआ है। घोटालों में इक्के दुक्के नेताओं और मंत्रियों की संलिप्तता नहीं है, बल्कि उसकी डोर कुछ खास राजनीतिक पार्टियों के शीर्ष नेतृत्व तक गई है। यह मामूली बात नहीं। देश की अर्थव्यवस्था पर इसका बहुत ही गंभीर परिणाम हुआ है। उत्तरप्रदेश की बानगी देखिए, पूरे पांच साल के शासन में बसपा ने सिवाय भूमि बेचने के कोई आर्थिक उपलब्धि हासिल नहीं की। न कोई औद्योगिक नीति बनाई न कोई निवेश नीति। प्रदेश के लोग रोजगार के लिए पहले की तरह ही दिल्ली–मुंबई भागते रहे। दरअसल देश में आर्थिक नीतियां इतनी लचर स्थिति में पहुंच गई हैं, कि कहीं किसी उद्यमी में कोई उत्साह संचार ही नहीं है। घोटालों और लूट के लिए यह पूरा दशक जाना जाएगा। कांग्रेस इसका कितना श्रेय लेना चाहेगी। शायद बिल्कुल नहीं। कांग्रेस के पास कहने को कुछ भी नहीं और विपक्ष के पास पूछने का साहस नहीं। कांग्रेस ने अपनी यूपीए सरकार का पहला पांच वर्ष आम आदमी के नारे में निकाल दिया और अपनी दूसरी पारी मनरेगा को जपने में निकाल रही है। क्या इन विधानसभा चुनावों में यह पूछा नहीं जाना चाहिए कि सामाजिक क्षेत्र के लिए लाखों करोड़ रुपये सालाना का प्रावधान करने वाली सरकार आर्थिक क्षेत्र के लिए क्या किया है। देश का निर्माण उद्योग नकारात्मक विकास की तरफ है। निर्यातक मायूस है। छोटे उद्योगों की हालत पहले से ज्यादा दयनीय है और बेरोजगारों को कोई पूछने वाला नहीं है। हां कुछ खास व्यापारिक घरानों ओर व्यक्तिगत फायदे के लिए सरकार ने कुछ जरूर किया, जिसकी कोख से टूजी घोटाला निकला। लेकिन अफसोस अभी तक कांग्रेस को कठघरे में खड़ा करने के लिए नैतिक बल की झलक दिखाई नहीं पड़ रही है। उलटे अब कांग्रेस भ्रष्टाचार बाकी दलों पर हमले कर रही है। कांग्रेस के एक महासचिव जब यह जुमला कसते हैं कि केंद्र से भेजा जाने वाला पैसा लखनऊ में बैठा जादू हाथी खा जाता है तो लोग ताली बजाते हैं। वहीं महासचिव जब यह कहते है कि भ्रष्टाचार में लिप्त यूपी का एक मंत्री किसी पार्टी को खरीद लिया तो भी सब लोग खामोश रहते हैं। भ्रष्टाचार के मुद्दे पर चुनावी दंगल में उतरे सारे पहलवान एक दूसरे पर सिर्फ कीचड़ उछाल रहे हैं। हमले से ज्यादा अपनी बचाव में लगे हैं। जबकि नारे और मुद्दे गढ़ने की आवश्यकता नहीं है। देश का हर आदमी जानता है कि लगभग आठ वर्ष के शासन काल में कांग्रेस ने क्या दिया!! क्या लोगों को यह बताने की जरूरत नहीं है कि इसी कांग्रेस की सरकार ने पिछले पांच साल में महंगाई इतनी बढ़ा दी कि लोगों के लिए जीना मुश्किल हो गया। क्या लोग यह नही समझेंगे कि कभी चीनी तो कभी दूध की कृत्रिम किल्लत पैदा कर कांग्रेस ने जमाखोरों को माला माल कर दिया। क्या कांग्रेस के बारे में किसी को यह याद दिलाना मुश्किल होगा कि विभिन्न एजेंसियों और मीडिया द्वारा गड़बड़ी की सूचना दिए जाने के बावजूद प्रधानमंत्री और कांग्रेस अध्यक्ष ने घोटाले होने दिए। क्या किसी को यह समझाना पड़ेगा कि काला धन को प्रोत्साहित करने में कांग्रेस सबसे आगे है। क्या यह मुद्दा नहीं बन सकता कि कांग्रेस विदेशी ताकतों के आगे झुक कर खुदरा व्यापार में बड़ी–बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को घुसाकर छोटे–छोटे घरेलू व्यापारियों का निवाला छिनने की तैयारी कर रही है। क्या जनता यह नहीं समझती कि किसानों और मजदूरों के लिए कांग्रेस की झोली में मायूसी के अलावा कुछ नहीं। क्या विदर्भ के किसानों की आत्महत्या कांग्रेस की अनर्थनीति का उदाहरण नहीं बन सकता। पर शायद महत्व मुद्दों को नहीं समीकरणों को दिया जाता है। चुनाव येन केन प्रकारेण जीतने की रणनीति को ज्यादा तवज्जों दी जाती है। जातीय समीकरण और क्षेत्रीय जरूरतों के आगे नीतियों पर अड़े रहना व्यावहारिक नहीं लगता इसीलिए पूरे पांच साल तक जिन मुद्दों पर संघर्ष किया जाता है, उन्हें चुनाव के मौके पर बहुत जरूरी नहीं माना जाता। यदि ऐसा नहीं होता तो इस बार के विधानसभा चुनाव कुछ ठोस मुद्दों पर लड़ा जाना चाहिए था। भूमि अधिग्रहण कानून कुछ दिन पहले तक बहस का बहुत बड़ा मुद्दा था चुनाव आते ही गायब हो गया। खुदरा व्यापार में विदेशी निवेश को लेकर आंदोलन हुआ चुनाव में अभी तक इस मुद्दे पर खामोशी है। पानी और बिजली जैसे बुनियादी जरूरत के मुद्दे किसी को भी प्रभावित नहीं करते। यही फर्क है, सिद्धांत की लड़ाई और व्यवहार की राजनीति में।

दोराहे पर देश

बजट कितना पार लगाएगा बेड़ा

बजट आने वाला है। वैसे तो कांग्रेस से पूरी जनता निराश ही रही है। अपने आठ साल के कार्य काल में आर्थिक मर्मज्ञ प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने लोगों को राहत कम कष्ट ज्यादा दिए हैं, फिर भी यह माना जा रहा है कि वर्ष 2012–13 का बजट देश और कांग्रेस के लिए काफी मायने रखता है। देश इस समय नीति के मामले में दोराहे पर खड़ा है। एक तरफ आर्थिक परेशानियां मुंह बाएं खड़ी हैं। मंदी की चपेट में अर्थव्यवस्था आ चुकी है। 2007–08 के बाद पहली बार ऐसा हो रहा है कि सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी सात फीसदी के नीचे रहने वाली है। कृषि विकास दर गिरकर 2.7 फीसदी आ चुकी है तो विनिर्माण क्षेत्र भी चार फीसदी से नीचे लुढक गया है . . .

सरकार कई प्रकार की मजबूरियां गिनाकर विदेशी कंपनियों को उन क्षेत्रों में आने की इजाजत दे सकती है, जहां घरेलू दबाव के कारण अभी तक विदेशी कंपनियों को प्रवेश की इजाजत नहीं है। उनमें सबसे ऊपर है खुदरा व्यापार के क्षेत्र में विदेशी निवेश को मंजूरी देना। चूंकि यह बजट पांच राज्यों के विधानसभा चुनाव के बाद आने की संभावना है, इसलिए जोखिम मोलकर भी मनमोहन सिंह की सरकार विदेशी आकाओं को खुश करने का प्रयास कर सकती है।

■ विक्रम उपाध्याय

बजट आने वाला है। वैसे तो कांग्रेस से पूरी जनता निराश ही रही है। अपने आठ साल के कार्य काल में आर्थिक मर्मज्ञ प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने लोगों को राहत कम कष्ट ज्यादा दिए हैं, फिर भी यह माना जा रहा है कि वर्ष 2012–13 का बजट देश और कांग्रेस के लिए काफी मायने रखता है। देश इस समय नीति के मामले में दोराहे पर खड़ा है। एक तरफ आर्थिक परेशानियां मुंह बाएं खड़ी हैं। मंदी की चपेट में अर्थव्यवस्था आ चुकी है।

2007–08 के बाद पहली बार ऐसा हो रहा है कि सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी सात फीसदी के नीचे रहने वाली है। कृषि विकास दर गिरकर 2.7 फीसदी आ चुकी है तो विनिर्माण क्षेत्र भी चार फीसदी से नीचे लुढक गया है। निर्माण उद्योग की वृद्धि दर भी चार फीसदी से थोड़ी ऊपर है। पर खनन क्षेत्र में नकारात्मक वृद्धि है।

केंद्र सरकार लुभावने नारों के लिए मनरेगा और खाद्य सुरक्षा विधेयक की रट भले ही लगा रही हो, पर ग्रामीण क्षेत्र की भारी समस्या है। यह ऐसा समय है, जहां सरकार कई प्रकार की मजबूरियां गिनाकर विदेशी कंपनियों को उन क्षेत्रों में आने की इजाजत दे सकती है, जहां घरेलू दबाव के कारण अभी तक विदेशी कंपनियों को प्रवेश की इजाजत नहीं है।

उनमें सबसे ऊपर है खुदरा व्यापार

के क्षेत्र में विदेशी निवेश को मंजूरी देना। चूंकि यह बजट पांच राज्यों के विधानसभा चुनाव के बाद आने की संभावना है, इसलिए जोखिम मोलकर भी मनमोहन सिंह की सरकार विदेशी आकाओं को खुश करने का प्रयास कर सकती है।

कांग्रेस के लिए भी यह बजट बहुत मायने रखता है। चूंकि लोकसभा का चुनाव 2014 में होना है, इस लिहाज से कांग्रेस के पास आखिरी मौका है कि वह देश की अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए कोई ठोस कदम उठाए। क्योंकि अगला बजट विशुद्ध रूप से चुनावी बजट होगा।

इस बात की पूरी संभावना है कि कांग्रेस आम आदमी के हित के खिलाफ जाकर भी कुछ नये उपाय करे। कांग्रेस के सामने सबसे बड़ी चुनौती अपने ही घर को ठीक रखने की है। यह साफ हो गया है कि आम चुनाव से ठीक पहले कांग्रेस के कई सहयोगी पार्टिया छोड़ कर जाने वाली है। तृणमूल कांग्रेस और शरद पवार की पार्टी अभी से ही कांग्रेस विरोधी आवाज उठाने लगी हैं।

इसलिए यह बजट कांग्रेस के नेतृत्व के लिए काफी महत्वपूर्ण होगा। कांग्रेस के लिए दोहरी चुनौती इस बात की होगी कि किस तरह बढ़ते घाटे पर अंकुश लगाते हुए मंदी से बचने के लिए सार्वजनिक निवेश बढ़ाए। धरातल पर कांग्रेस के लिए बहुत कठिनाई है। क्योंकि चालू वर्ष में राजस्व उगाही लक्ष्य से कम और खर्च आकलन से ज्यादा।

हाल ही में जारी आकड़ों के अनुसार

वर्ष 2011 में घाटे के अनुमान से वास्तविक घाटा 163.8 फीसदी हो गई है। यानी घाटा डेढ गुना ज्यादा हो चुका है। कर उगाही कम हुई है। सब्सिडी का बोझ ज्यादा बढ़ा है। पूरे साल शेयर बाजार में अनिश्चितता बनी रही जिसके कारण सरकारी कंपनियों के शेयर बेचकर 40 हजार करोड़ रुपये जुटाने का लक्ष्य धरा का धरा रह गया है।

कर उगाही में कमी का मुख्य कारण भी लोग सरकार को ही मान रहे हैं। महंगाई कम करने की कवायद में इस सरकार ने उद्योग धंधों को दाव पर लगा दिया। लगातार बैंक दर में वृद्धि और तरलता में कमी का परिणाम यह आया कि भारतीय उद्योग धंधे अपने आप ही संकुचित होते चले गए।

सरकार द्वारा जारी आकड़े के अनुसार 2011–12 के लक्ष्य के मुकाबले सिर्फ 63.3 फीसदी ही कर राजस्व प्राप्त हुआ। जबकि पिछले साल यानी 2010–11 में कर उगाही लक्ष्य को 74 फीसदी पूरा कर लिया गया था। सरकार का यह लक्ष्य कि वित्तीय घाटा पांच फीसदी से नीचे रखेंगे, पूरी तरह फेल हो गया है। अनुमान है कि चालू वित वर्ष का वित्तीय घाटा

कांग्रेस ने खेत की उपज बढ़ाने और किसानों को उचित मूल्य दिलाने की नीति पर काम करने के बजाय सस्ती लोकप्रियता के हथकंडे अपनाए हैं। मनरेगा में लूट और किसानों की दयनीय हालत दोनों बताती हैं कि कांग्रेस की सोंच खेती और किसानों को लेकर सही नहीं है। आम शहरी कांग्रेस राज से कुपित है। उसकी कमाई भांप की तरह उड़ जा रही है। बेलगाम महंगाई ने उसे कहीं नहीं छोड़ा है। उस पर से मंदी का आलम यह है कि नौकरियां मुश्किल से मिल रही हैं। उसके लिए इस बजट से एक ही अपेक्षा है कि उसकी कमाई पर देय कर का बोझ कुछ कम हो जाए।

लगभग छह फीसदी हो सकता है।

कांग्रेस के सामने सबसे बड़ा सवाल यह है कि वह आखिर इस स्थिति से उबरे कैसे। उसके पास खाद्य और पेट्रोलियम पदार्थों पर दी जा रही सब्सिडी को समाप्त करने या कम करने का विकल्प बहुत ही सीमित है। हालांकि कांग्रेस का एक वर्ग इस बात का प्रयास कर रहा है कि डीजल और रसोई गैस को भी बाजार के हवाले कर दिया जाए। जिस तरह पेट्रोल के दाम बाजार पर आधारित कर दिया गया है उसी तरह डीजल के मूल्य को भी नियंत्रण मुक्त कर दिया जाए।

रसोई गैस में भारी वृद्धि से पूरा मध्यवर्ग कांग्रेस के खिलाफ हो जाएगा तो डीजल को बाजार के हवाले करने का मतलब होगा राजनीतिक उबाल। पर प्रणव मुखर्जी इस बार ज्यादा दृढ़ लगते हैं। उन्होंने हाल ही में कहा था – जितनी सब्सिडी हम दे रहे हैं, जब उसका आकलन मैं करता हूँ, तो मुझे रातों की नींद नहीं आती।'

पर चुनाव के ठीक पहले कांग्रेस के लिए ऐसा करना संभव नहीं होगा। रसोई गैस में भारी वृद्धि से पूरा मध्यवर्ग कांग्रेस के खिलाफ हो जाएगा तो डीजल को बाजार के हवाले करने का मतलब होगा राजनीतिक उबाल। पर प्रणव मुखर्जी इस बार ज्यादा दृढ़ लगते हैं।

उन्होंने हाल ही में कहा था – जितनी सब्सिडी हम दे रहे हैं, जब उसका आकलन मैं करता हूँ, तो मुझे रातों की नींद नहीं आती।' लगता है कि इस बार कांग्रेस आम आदमी की चैन छिनने का प्रावधान करने वाली है।

कांग्रेस के लिए देश को मौजूदा आर्थिक संकट से बाहर निकालने और सभी की अपेक्षाएं पूरा करने में आंधी आ जाएगी। मंदी से निकलने के लिए एक तरफ भारी निवेश की जरूरत बताई जा रही है तो दूसरी तरफ घाटा कम करने और सब्सिडी घटाए जाने की जरूरत पर बल दिया जा रहा है।

ग्रामीण भारत त्राहि–त्राहि कर रहा है। उसे कांग्रेस सरकार में दोहरी मार लगी है। एक तरफ उसकी उपज का कोई उचित खरीददार नहीं मिल रहा है दूसरी तरफ महंगाई के कारण खेती करना लगभग असंभव होता जा रहा है। खाद और बीजों का वितरण लगभग निजी क्षेत्र के हाथों में आ गया है, किसानों को सीधा लाभ मिलने की कोई संभावना नहीं बची है। उसे सरकार से कहीं भी कोई आस है तो उसकी किसान क्रेडिट कार्ड की सीमा बढ़ाना और कृषि उपज की सही मूल्य पर खरीददारी रह गई है।

कांग्रेस ने खेत की उपज बढ़ाने और किसानों को उचित मूल्य दिलाने की नीति पर काम करने के बजाय सस्ती लोकप्रियता के हथकंडे अपनाए हैं। मनरेगा में लूट और किसानों की दयनीय हालत दोनों बताती है कि कांग्रेस की सोच खेती और किसानों को लेकर सही नहीं है।

आम शहरी कांग्रेस राज से कुपित है। उसकी कमाई भाप की तरह उड़ जा रही है। बेलगाम महंगाई ने उसे कहीं नहीं छोड़ा है। उस पर से मंदी का आलम यह है कि नौकरियां मुश्किल से मिल रही हैं। उसके लिए इस बजट से एक ही अपेक्षा है कि उसकी कमाई पर देय कर का बोझ कुछ कम हो जाए।

यानी तीन लाख तक की कमाई कर मुक्त हो जाए। अपेक्षा भारतीय उद्योग को भी बहुत है। हाल ही में वित्तमंत्री के साथ बजट पूर्व चर्चा से निकलकर भारतीय कॉरपोरेट के महारथियों ने एक सुर में कहा – हम नहीं चाहते कि इस बार कॉरपोरेट कर में कोई बढ़ोतरी हो। पर यहां भी इन्हें निराशा लग सकती है।

वित्तमंत्री ने भी उतनी ही कठोरता से कहा – कॉरपोरेट घरानों को ज्यादा कर देने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। माना यह भी जा रहा है कि कांग्रेस सामाजिक सरोकार के लिए निजी कंपनियों पर कुछ दायित्व का बोझ डाल सकती है। ❑

किसान विरोधी है : खुदरा में विदेशी निवेश

अंतर्राष्ट्रीय अनुभव बताता है कि इन बहुराष्ट्रीय विशालकाय कंपनियों के चलते गुणवत्ता और मानकों के नाम पर किसानों को भारी नुकसान पहुंचता है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार गुणवत्ता, मानकों और इन कंपनियों की विपणन नीतियों के कारण किसानों को भारी नुकसान पहुंचता है। इसलिये इन कंपनियों द्वारा भंडारण और शीतगृह बनाना देश के किसानों तथा उपभोक्ताओं के हित के लिये नहीं है।

■ डॉ. अश्विनी महाजन

खुदरा में विदेशी निवेश पर बहस का रूख मोड़ते हुये सरकार यह दावा कर रही है कि इससे किसानों को बहुत लाभ होगा और खेती का विकास करने में इससे मदद मिलेगी। सरकार का यह तर्क किसी शोध या सर्वेक्षण पर आधारित नहीं है। वास्तव में सरकार ने तर्क खुदरा में प्रवेश को आतुर विदेशी कंपनियों के विज्ञापनों, अमेरीकी सरकार के प्रतिनिधि तथा अन्य वर्गों से ही उधार लिया हुआ है।

स्वभाविक ही है कि खुदरा में विदेशी निवेश से लाभान्वित होने को आतुर बहुराष्ट्रीय कंपनियां तो अपने पक्ष में तर्क देंगी ही कि उनके कारण देश को तरह–तरह के लाभ होंगे। दुर्भाग्यपूर्ण तो यह है कि सरकार जो देश के किसानों, उपभोक्ताओं, उत्पादकों सहित सभी वर्गों के हित संरक्षण के लिये जिम्मेदार है, भी उन तर्कों को मान कर उन्हें आगे बढ़ाने का काम कर रही है।

भारती–वालमार्ट कंपनी के विज्ञापन में कंपनी दावा करती है कि किसान को जो कीमत मंडी से मिलती है, उससे 7 से 10 प्रतिशत ज्यादा कीमत वे किसान को दे रहे हैं। कंपनी दावा करती है कि कंपनी से मिलने वाली मदद से किसान अपने उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार करते हुये ज्यादा आमदनी प्राप्त कर सकते हैं।

अमेरीकी सरकार के प्रतिनिधि भी इसी प्रकार के तर्कों द्वारा सरकार को समझाने का प्रयास कर रहे हैं कि खुदरा में विदेशी कंपनियों के आने से किसानों को बहुत लाभ होगा।

उनका कहना है कि खुदरा में विदेशी निवेश से उपभोक्ताओं को तो कम कीमत का लाभ मिलेगा ही, बल्कि किसानों के लिए भी अच्छा है क्योंकि उनके उत्पादों के लिये एक स्थिर बाजार ये कंपनियां

दुर्भाग्यपूर्ण है कि आजादी के 64 वर्ष बाद भी हमारी सरकार समुचित भंडारण की व्यवस्था उपलब्ध नहीं करवा पाई है और उसके लिये भी विदेशी निवेश पर निर्भरता दिखा रही है। योजना आयोग ने स्वयं माना है कि देश में भंडारण और कोल्ड स्टोरेज की व्यवस्था के लिये मात्र 7,687 करोड़ रूपये के निवेश की जरूरत है। केन्द्र सरकार के 12 लाख 57 हजार करोड़ रूपये के सालाना बजट के मद्देनजर यह इतनी बड़ी राशि नहीं है, जो जुटाई न जा सके और उसके लिये करोड़ों लोगों के रोजगार को दांव पर लगा दिया जाये।

देंगी।

लेकिन इन (उधार लिये हुये) सरकारी तर्कों की, अन्य देशों जहां ये बहुराष्ट्रीय खुदरा कंपनियां काम कर रही हैं, के अनुभवों के मद्देनजर जांच करने की जरूरत है। आंकड़े बयान करते हैं कि अमेरिका में खाद्य पदार्थों पर कुल उपभोक्ता खर्च वर्ष 2000 में 833 अरब डालर से बढ़कर 2009 में 1200 अरब डालर तक पहुंच गया (यानि 70 अरब डालर की वृद्धि)।

दूसरी ओर यदि खाद्य पदार्थों के विक्रय से कृषि आमदनी की बात करें तो यह इस दौरान 197.6 अरब डालर से मात्र 282 अरब डालर तक ही पहुंच पाई। इससे स्पष्ट है कि खुदरा में संलग्न कंपनियां किसानों को अधिक से अधिक निचोड़ने का काम करती हैं।

अमेरीकी सरकार के कृषि विभाग के अनुसार वर्ष 2000 से 2009 के बीच खाद्य खुदरा कीमतों के प्रतिशत के रूप में सब्जियों के लिये मिलने वाला हिस्सा 23 से 28 प्रतिशत और ताजे फलों के लिये मिलने वाला हिस्सा 25 से 30 प्रतिशत रहा।

यदि हम उन देशों के अनुभवों की, जहां ये बड़ी बहुराष्ट्रीय खुदरा कंपनियां कार्यरत हैं की तुलना भारत से करें तो ध्यान में आता है कि 1950 में अमेरीकी किसानों को उपभोक्ता व्यय का 40 प्रतिशत प्राप्त होता था, जो घट कर अब मात्र 25 प्रतिशत से भी कम हो गया है।

अमरीकी किसानों को दूध की खुदरा कीमत का 45 प्रतिशत, अंडों का 41 प्रतिशत, मांस का 32 प्रतिशत ही मिलता है। भारत में (जहां छोटे दुकानदारों का

प्रादुर्भाव है), दूध की खुदरा कीमत 34 रूपये प्रति किलो (अमूल) में से 26 रूपये प्रति किलो (76.5 प्रतिशत) और चीनी की खुदरा कीमत 35 रूपये प्रति किलो में से 22 रूपये (63 प्रतिशत) किसानों को प्राप्त होता है।

यह सही है कि ढांचागत सुविधाओं (भंडारण और शीतगृहों) के अभाव में किसानों को सब्जियों और फलों के लिये अच्छी कीमतें नहीं मिल पाती, लेकिन मोटे तौर पर खुदरा का भारतीय मॉडल किसानों के लिये अमेरीकी मॉडल से कहीं ज्यादा लाभकारी है।

सरकार का यह तर्क है कि विदेशी खुदरा कंपनियों द्वारा किसानों से सीधी खरीद के चलते बिचौलियों और एजेंटों की जरूरत समाप्त हो जायेगी, जिसके चलते उपभोक्ता को लाभ होगा। इस बात की जब हम व्यवहारिकता के धरातल पर जांच करने का प्रयास करते हैं तो अंतर्राष्ट्रीय अनुभव बताता है कि अधिकांश खाद्य व्यापार में मात्र कुछ ही कंपनियों का दबदबा है। ये कंपनियां खाद्य पदार्थों की खरीद में एकाधिकार रखती हैं। इस एकाधिकार की यह स्थिति है कि यूरोप में 32 लाख किसानों से मात्र कुछ बड़ी कंपनियां ही खरीद करती हैं, जो 16 करोड़ उपभोक्ताओं को ये खाद्य पदार्थ बेचती हैं।

एकाधिकार का आलम यह है कि इंग्लैंड में मात्र 4 कंपनियां दो-तिहाई खाद्य पदार्थों की खरीद पर नियंत्रण

आज से एक दशक पूर्व जब गेहूं किसान से 6 रूपये किलो खरीदा जाता था, बाजार में आटे का भाव 7 से 8 रूपये किलो होता था। लेकिन आज इन कंपनियों द्वारा अनाज की भारी खरीद के चलते आटे का भाव 22 से 25 रूपये किलो पहुंच चुका है, जबकि किसान को अभी भी मात्र 12 से 13 रूपये किलो का भाव ही मिलता है।

रखती हैं, जबकि अमेरिका में 60 प्रतिशत खाद्य खरीद पर मात्र 5 कंपनियों का कब्जा है। भारत में भी जब से विदेशी और भारतीय कंपनियों द्वारा अनाज की खरीद होने लगी है, खुदरा कीमतों और किसान के खरीद कीमत के बीच अंतर बढ़ता ही जा रहा है।

आज से एक दशक पूर्व जब गेहूं किसान से 6 रूपये किलो खरीदा जाता था, बाजार में आटे का भाव 7 से 8 रूपये किलो होता था। लेकिन आज इन कंपनियों द्वारा अनाज की भारी खरीद के चलते आटे का भाव 22 से 25 रूपये किलो पहुंच चुका है, जबकि किसान को अभी भी मात्र 12 से 13 रूपये किलो का भाव ही मिलता है।

यदि सरकार यह दावा करती है कि खुदरा क्षेत्र में विदेशी कंपनियों के आने से देश में भंडारण और कोल्ड स्टोरेज की कमी दूर हो जायेगी तो यह भ्रामक होगा। सरकार द्वारा एक दशक से भी पहले भंडारण और कोल्ड स्टोरेज में विदेशी निवेश खोल दिया गया था, लेकिन इस क्षेत्र में कोई विदेशी निवेश प्राप्त नहीं हुआ। इसलिये अगर खुदरा क्षेत्र में आने वाली विदेशी कंपनियां भंडारण और कोल्ड स्टोरेज बनाती है तो यह अपने हित साधन के लिये और यही नहीं किसान और उपभोक्ता के शोषण के लिये ही बनाएगी।

भंडारण और कोल्ड स्टोरेज, किसान के उत्पाद को बचाने के लिये अत्यंत जरूरी है। देश की खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चत करने के लिये सरकार का यह दायित्व है कि वह भंडारण और कोल्ड स्टोरेज की समुचित व्यवस्था करे।

दुर्भाग्यपूर्ण है कि आजादी के 64 वर्ष बाद भी हमारी सरकार समुचित भंडारण की व्यवस्था उपलब्ध नहीं करवा पाई है और उसके लिये भी विदेशी निवेश पर निर्भरता दिखा रही है। योजना आयोग ने स्वयं माना है कि देश में भंडारण और कोल्ड स्टोरेज की व्यवस्था के लिये मात्र

7,687 करोड़ रूपये के निवेश की जरूरत है। केन्द्र सरकार के 12 लाख 57 हजार करोड़ रूपये के सालाना बजट के मद्देनजर यह इतनी बड़ी राशि नहीं है, जो जुटाई न जा सके और उसके लिये करोड़ों लोगों के रोजगार को दांव पर लगा दिया जाये।

अंतर्राष्ट्रीय अनुभव बताता है कि इन बहुराष्ट्रीय विशालकाय कंपनियों के चलते गुणवत्ता, और मानकों के नाम पर किसानों को भारी नुकसान पहुंचता है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार गुणवत्ता, मानकों और इन कंपनियों की विपणन नीतियों के कारण किसानों को भारी नुकसान पहुंचता है।

अंतर्राष्ट्रीय अनुभव बताता है कि इन बहुराष्ट्रीय विशालकाय कंपनियों के चलते गुणवत्ता और मानकों के नाम पर किसानों को भारी नुकसान पहुंचता है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार गुणवत्ता, मानकों और इन कंपनियों की विपणन नीतियों के कारण किसानों को भारी नुकसान पहुंचता है। इसलिये इन कंपनियों द्वारा भंडारण और शीतगृह बनाना देश के किसानों तथा उपभोक्ताओं के हित के लिये नहीं है। इन कंपनियों द्वारा गुणवत्ता के नाम पर जिस प्रकार से खाद्य पदार्थों को खारिज कर दिया जाता है, और उसे किसानों को नष्ट करना पड़ता है या पशुओं को चारे के रूप में खिलाना पड़ता है। छोटे दुकानदारों के मॉडल में यह सामान सस्ते दाम पर मानवीय उपभोग के लिये उपलब्ध हो जाता है।

भारत में कुपोषण और भुखमरी के ताजा हालातों के चलते देश में इस प्रकार से खाद्य पदार्थों की बरबादी किसी हालत में सही नहीं होगी। ❑

बीज में छिपी है खाद्य संप्रभुता

पूरी दुनिया में नया बीज कानून लाया जा रहा है, जिसमें बीजों का पंजीयन कराना अनिवार्य है। इस प्रकार छोटे किसान अपनी विविध प्रकार की फसलें नहीं उगा सकेंगे और जबरन उन्हें बड़े बीज निगमों पर निर्भर रहना होगा। ये बड़े निगम किसानों द्वारा विकसित मौसम के अनुकूल बीजों का भी पेटेंट करा रहे हैं। इस प्रकार किसानों के बीज और ज्ञान का उपयोग कर ये उन्हें लूट रहे हैं।

■ वंदना शिवा

यदि किसानों के पास अपना बीज न हो या मुक्त परागण किस्मों तक उनकी पहुंच न हो, जिसे वे सुरक्षित रख सकें या जिसका वे विनिमय कर सकें, तो उनके पास बीज संप्रभुता नहीं होगी। नतीजतन उनके पास खाद्य संप्रभुता भी नहीं होगी। गहराते कृषि एवं खाद्य संकट की जड़ें बीज आपूर्ति प्रणाली में हो रहे बदलाव और बीज विविधता व बीज संप्रभुता के क्षरण में निहित है। क्योंकि खाद्य शृंखला की पहली कड़ी बीज ही है।

बीज संप्रभुता से आशय किसानों के अधिकारों की सुरक्षा और विभिन्न प्रकार के बीज स्रोतों तक पहुंच बनाने के लिए बीज एवं उसकी प्रजातियों के विनिमय से है, जिन्हें उभरती हुई बड़ी बीज कंपनियों द्वारा पेटेंट कराने, स्वामित्व हासिल करने, नियंत्रित करने और आनुवांशिक रूप से परिष्कृत किए जाने से बचाया जा सकता है। यह बीज एवं जैव विविधता को सार्वजनिक वस्तु के रूप में उपयोग में लाने पर आधारित है।

पिछले 20 वर्षों में बीज विविधता और बीज संप्रभुता के मामले में बड़ी तेजी से क्षरण देखा गया है। अब बीजों पर कुछ बड़ी कंपनियों का नियंत्रण बढ़ गया है। 1995 में जब संयुक्त राष्ट्र ने लाइपजिंग में प्लांट जेनेटिक रिसोर्स कांफ्रेंस का आयोजन किया था, तो बताया गया था कि कृषि जैव विविधता का 75 प्रतिशत हिस्सा 'आधुनिक' किस्मों के इस्तेमाल के कारण लुप्त हो गया। उसके बाद से यह क्षरण तेजी से बढ़ा है।

विश्व व्यापार संगठन के व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकार समझौते ने आनुवांशिक रूप से तैयार बीजों के प्रसार में तेजी लाई है, जिसका पेटेंट कराया जा सकता है और रॉयल्टी वसूली जा सकती है। नवदान्या की शुरुआत गैट के व्यवसाय संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकार समझौते के जवाब में की गई थी, जिसके बारे में बाद में मोनसेंटो के प्रतिनिधि ने कहा था कि इस समझौते का मसौदा तैयार करते वक्त इसके सर्वेसर्वा वह ही थे।

विश्व व्यापार संगठन के व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकार समझौते ने आनुवांशिक रूप से तैयार बीजों के प्रसार में तेजी लाई है, जिसका पेटेंट कराया जा सकता है और रॉयल्टी वसूली जा सकती है। नवदान्या की शुरुआत गैट के व्यवसाय संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकार समझौते के जवाब में की गई थी....

निगम ने इसमें एक समस्या को

पारिभाषित किया कि किसान बीज को संजोकर रखते हैं। इसका हल उन्होंने यही सुझाया कि बीज के पेटेंट और बौद्धिक संपदा अधिकार के जरिये किसानों द्वारा बीज संजोकर रखने को अवैध घोषित कर दिया जाए। इसका नतीजा यह हुआ कि आनुवांशिक रूप से तैयार मक्का, सोया, राई, कपास आदि की खेती का क्षेत्रफल नाटकीय ढंग से बढ़ गया।

पेटेंट कराए गए आनुवांशिक रूप से तैयार बीज विविधता को खत्म और विस्थापित करने के अलावा बीज संप्रभुता को भी कम कर रहे हैं। पूरी दुनिया में नया बीज कानून लाया जा रहा है, जिसमें बीजों का पंजीयन कराना अनिवार्य है। इस प्रकार छोटे किसान अपनी विविध प्रकार की फसलें नहीं उगा सकेंगे और जबरन उन्हें बड़े बीज निगमों पर निर्भर रहना होगा। ये बड़े निगम किसानों द्वारा विकसित मौसम के अनुकूल बीजों का भी पेटेंट करा रहे हैं। इस प्रकार किसानों के बीज और ज्ञान का उपयोग कर वे उन्हें लूट रहे हैं।

बीज एवं बीज संप्रभुता के लिए दूसरा खतरा बीजों का आनुवांशिक सम्मिश्रण (प्रदूषण) भी है। जैसे ही किसानों की बीज आपूर्ति रोक दी जाती है और वे पेटेंट किए हुए बीजों पर निर्भर हो जाते हैं, तो उसका नतीजा यही होता है कि वे कर्जदार हो जाते हैं। कपास उत्पादन के लिए मशहूर भारत बीटी कपास बीज के कारण न केवल कपास बीजों की विविधता गंवा बैठा, बल्कि यहां कपास बीज की संप्रभुता भी खत्म हो गई। 95 प्रतिशत कपास बीज मोनसेंटो कंपनी का बीटी कपास है।

हर वर्ष किसानों को बीज खरीदने के लिए मजबूर करके उन्हें कर्ज के जाल

2004 से भारत भी एक बीज कानून लाना चाह रहा है, जिसमें किसानों को अपने बीज का पंजीयन कराना होगा। अगर यह कानून लागू हो गया, तो किसान स्वदेशी बीजों का उपयोग न करने को मजबूर हो जाएंगे। इसके खिलाफ बीज सत्याग्रह तक किया जा चुका है और प्रधानमंत्री को हजारों लोगों के हस्ताक्षर वाला ज्ञापन भी सौंपा गया है।

में फंसाया जाता है। रॉयल्टी भुगतान नहीं कर पाने के चलते किसान आत्महत्या को मजबूर होते हैं।

यहां तक कि जैव विविधता और बीज संप्रभुता के क्षरण ने व्यापक कृषि एवं खाद्य संकट को जन्म दिया है। बीज निगम सरकार पर दबाव डालता है कि वह सार्वजनिक बीज आपूर्ति को खत्म करने और उसके बदले अविश्वसनीय पेटेंट किए हुए बीजों को खरीदने के लिए सार्वजनिक धन का उपयोग करे, जिसे हर साल खरीदना होगा।

यूरोप में 1994 में पौधों की प्रजातियों को बचाने के लिए एक प्रस्ताव लाया गया था, जिसमें किसानों को बीज कंपनियों को अनिवार्य स्वैच्छिक योगदान देने के लिए कहा गया। यह अपने–आप में विरोधाभासी है, क्योंकि जो अनिवार्य होगा, वह स्वैच्छिक नहीं हो सकता।

अनिवार्य स्वैच्छिक योगदान यानी रॉयल्टी को इस आधार पर उचित ठहराया जाता है कि बीज कंपनियों को सतत शोध एवं आनुवांशिक संसाधनों को बढ़ाने के लिए शुल्क दिया जाना चाहिए। मोनसेंटो ने जैव विविधता और किसान समुदायों से आनुवांशिक संसाधनों की नकल की थी। ऐसा उसने गेहूं के मामले में किया था, जिस पर नवदान्या ने ग्रीनपीस के साथ जैव नकल का मुकदमा लड़ा था।

पिछले दिनों फोर्ब्स पत्रिका में एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसमें बताया गया था कि किस तरह कृषि व्यवसाय अमेरिका का अकेला ऐसा क्षेत्र है, जिसमें उसका सकारात्मक व्यापार संतुलन है।

अमेरिका इसीलिए जीएम फूड को बढ़ावा देता है, क्योंकि इसके जरिये उसे रॉयल्टी मिलती है। विश्व व्यापार संगठन में भारत के खिलाफ अमेरिका के पहले विवाद के दौरान भारत पर बीजों के पेटेंट की अनुमति के लिए दबाव डाला गया था।

इसलिए 2004 से भारत भी एक बीज कानून लाना चाह रहा है, जिसमें किसानों को अपने बीज का पंजीयन कराना होगा। अगर यह कानून लागू हो गया, तो किसान स्वदेशी बीजों का उपयोग न करने को मजबूर हो जाएंगे। इसके खिलाफ बीज सत्याग्रह तक किया जा चुका है और प्रधानमंत्री को हजारों लोगों के हस्ताक्षर वाला ज्ञापन भी सौंपा गया है।

भारत ने भी मोनसेंटो के साथ भारत–अमेरिकी ज्ञान पहल पर हस्ताक्षर किया है। राज्यों को भी मोनसेंटो के साथ समझौता करने के लिए दबाव डाला जा रहा है। इसका एक उदाहरण मोनसेंटो – राजस्थान समझौता है, जिसके तहत मोनसेंटो को आनुवांशिक संसाधनों पर बौद्धिक संपदा अधिकार और बीजों पर शोध करने का अधिकार मिल जाएगा। यह समझना पड़ेगा कि अमेरिकी पर मोनसेंटो का दबाव और फिर इन दोनों का दुनिया भर की सरकारों पर संयुक्त दबाव बीज खाद्य एवं लोकतंत्र के भविष्य के लिए एक बड़ा खतरा है। ❑

कुपोषण के मूल कारण

सरकार जितना अधिक कृषि के बुनियादी आधारों को ध्वस्त करके किसानों को खेती छोड़ने और उन्हें शहर में पलायन करने को मजबूर करेगी, भूख और कुपोषण का कहर उतना ही अधिक विकराल होगा। गरीबों और भूखों की सहानुभूति में केवल जबानी जमाखर्च करने से कुछ नहीं होगा, अगर प्रधानमंत्री वास्तव में कुपोषण से शर्मिंदा हैं तो उन्हें आर्थिक नीतियों में बदलाव कर इन्हें जनवादी और पर्यावरण अनुकूल बनाना होगा।

■ देविन्दर शर्मा

दस साल पहले अप्रैल 2001 को तत्कालीन प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने एक गोष्ठी में कहा था, 'लोकतंत्र और भूख साथ–साथ नहीं चल सकते। आधुनिक युग में भूख और गरीबी का कोई स्थान नहीं है, जिसमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने पर्याप्त और समतामूलक विकास की अवस्था तैयार की है।' और उनकी सरकार ने जो कुछ किया वह यह कि सार्वजनिक वितरण व्यवस्था को सशक्त करने के लिए महज इसका नाम बदल दिया और 'खाद्यान्न भंडार को कल्पनाशीलता और उद्देश्यपूर्ण तरीकों से संभाल किया' ताकि दाम स्थिर हो सकें और इनका निर्यात बढ़ सके। उनके कार्यकाल में और उसके बाद भी भूख और कुपोषण का कहर बढ़ता चला गया।

जब मैं प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को कुपोषण को राष्ट्रीय शर्म कहते हुए सुनता हूँ, तो मुझे जरा भी हैरानी नहीं होती। पांच राज्यों में होने वाले विधानसभा चुनावों के मद्देनजर पूरी कवायद चुनाव संदर्भित नजर आ रही है। भूख और कुपोषण पर रिपोर्ट जारी करते हुए वह कहते हैं, 'हमारी जीडीपी में प्रभावी वृद्धि के बावजूद देश में कुपोषण का स्तर अस्वीकार्य रूप से ऊंचा है।' इससे भी बड़ी शर्म की बात यह है कि देश के प्रधानमंत्री ने सात साल बाद छह साल से छोटे बच्चों के कुपोषण की सुध ली है।

एक साल पहले 'सेव द चिल्ड्रेन' नामक संगठन ने कुपोषण और भुखमरी के संदर्भ में चौंकाने वाली रिपोर्ट जारी की थी, जिस पर प्रधानमंत्री का ध्यान नहीं गया था। आखिरकार, हम प्रधानमंत्री कार्यालय पर दोष नहीं मढ़ सकते कि उसने उच्च विकास और गरीबी उन्मूलन के सह–संबंध पर प्रधानमंत्री को अंधेरे में रखा। न ही हमें योजना आयोग द्वारा सुरेश तेंदुलकर समिति की अनुशंसा पर बीपीएल रेखा को ऊपर उठाने में कुछ असामान्य लगा।

यह सब इसलिए हुआ क्योंकि समग्र नीति योजना अधिकाधिक प्रत्यक्ष विदेशी

भूख और कुपोषण पर रिपोर्ट जारी करते हुए वह कहते हैं, 'हमारी जीडीपी में प्रभावी वृद्धि के बावजूद देश में कुपोषण का स्तर अस्वीकार्य रूप से ऊंचा है।' इससे भी बड़ी शर्म की बात यह है कि देश के प्रधानमंत्री ने सात साल बाद छह साल से छोटे बच्चों के कुपोषण की सुध ली है।

यह उन नीतियों का परिणाम है जो जल, जंगल और कृषि भूमि जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर सामुदायिक नियंत्रण हासिल करती हैं और यह उन नवउदारवादी नीतियों की उपज है जो सामाजिक दायित्वों से मुंह चुराकर कृषि को उद्योग घरानों को सौंपती हैं।

निवेश जुटाने, उद्योगों के लिए कृषि भूमि अधिग्रहण के उपाय करने और उद्योग जगत को कर में तरह–तरह की छूट और प्रलोभन देने पर केंद्रित है।

संभवतः प्रधानमंत्री राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वे–3, 2005–06 रिपोर्ट को पढ़ना भी भूल गए थे, जिसमें लिखा था कि देश के आधे से अधिक बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। सितंबर 2010 में जारी एक और रिपोर्ट 'ए फेयर चांस ऑफ लाइफ' भी शायद उनकी नजर के सामने से नहीं गुजरी।

यह रिपोर्ट प्रमुख समाचार पत्रों के मुखपृष्ठ पर स्थान नहीं पा पाई क्योंकि इसे सांसदों के किसी समूह का समर्थन हासिल नहीं था। रिपोर्ट के अनुसार हर साल पैदा होने वाले 2.6 करोड़ बच्चों में से करीब 18 लाख पांचवें जन्मदिवस से पहले ही मर जाते हैं और मरने वाले बच्चों में से आधे तो अपने जन्म के बाद एक माह भी नहीं जी पाते।

यह मां और बच्चों के स्वास्थ्य और कुपोषण का स्पष्ट संकेतक है। नवजात शिशु का स्वास्थ्य अपनी मां के स्वास्थ्य पर ही निर्भर करता है। अतः नवजात शिशुओं की मौत से जाहिर तौर पर गरीबों और जरूरतमंदों तक खाद्यान्न पहुंचा पाने में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की अक्षमता और अयोग्यता की पोल खुल जाती है।

भूख और कुपोषण का गहरा नाता है। जनसंख्या को स्वस्थ बनाए रखने के लिए उसका पेट भरना पहली शर्त है।

कुपोषण से बचने के लिए युद्धस्तरीय राष्ट्रीय कार्यक्रम कहीं नजर नहीं आता। दोषपूर्ण आंगनबाड़ी व्यवस्था से सहायता प्राप्त आईसीडीएस कार्यक्रम की ओर सरकार का ध्यान नहीं जा रहा है। इस कार्यक्रम को शुरू हुए 37 साल हो गए हैं किंतु यह बच्चों के स्वास्थ्य व पोषण के अपने लक्ष्यों के करीब भी नहीं पहुंच सका है। इसकी विफलता इसी तथ्य से उजागर हो जाती है कि जिन सौ जिलों में हंगामा सर्वेक्षण किया गया था उनमें आईसीडीएस कार्यक्रम चल रहा था।

एकीकृत बाल विकास योजना जैसे पूरक पोषण कार्यक्रम तभी प्रभावी हो सकते हैं जब बच्चों का पेट भरा हो।

इसमें कोई संदेह नहीं कि अगर मां स्वस्थ होगी तो उसके नवजात शिशु के जिंदा रहने की संभावना बढ़ जाएगी। प्रधानमंत्री का यह कहना सही है, 'हमारा विश्वास है कि मां की शिक्षा का स्तर, परिवार का आर्थिक स्तर, साफ–सफाई, परिवार और समाज में महिलाओं का दर्जा और स्तनपान आदि बच्चों के पोषण को प्रभावित करते हैं।'

प्रत्येक सर्वे में इन सहसंबंधों का उल्लेख किया जाता है। किंतु कुपोषण से बचने के लिए युद्धस्तरीय राष्ट्रीय कार्यक्रम कहीं नजर नहीं आता। दोषपूर्ण आंगनबाड़ी व्यवस्था से सहायता प्राप्त आईसीडीएस कार्यक्रम की ओर सरकार का ध्यान नहीं जा रहा है। इस कार्यक्रम को शुरू हुए 37 साल हो गए हैं किंतु यह बच्चों के स्वास्थ्य व पोषण के अपने लक्ष्यों के करीब भी नहीं पहुंच सका है। इसकी विफलता इसी तथ्य से उजागर हो जाती है कि जिन सौ जिलों में हंगामा सर्वेक्षण किया गया था उनमें आइसीडीएस कार्यक्रम चल रहा था।

आईसीडीएस कार्यक्रम के माध्यम से बच्चों और माताओं के स्वास्थ्य की दशा सुधारने से पहले इस कार्यक्रम की बिगड़ती सेहत को संभालना जरूरी है।

बाल विकास मंत्री कृष्णा तीरथ ने अगले पांच साल के लिए सरकार से दो लाख करोड़ रुपयों की मांग की है। बजट का बढ़ा हुआ प्रावधान भी पर्याप्त साबित नहीं होगा जब तक कि पोषक तत्वों के दैनिक मानक को पांच रुपये प्रति व्यक्ति से बढ़ाया नहीं जाएगा। यह समझ से परे है कि आज की महंगाई में एक बच्चे के लिए पांच रुपये में कौन से पोषक तत्वों को खरीदा जा सकता है। यह राशि बिल्कुल बेमानी है और इसे व्यावहारिक बनाया जाना चाहिए।

इसी प्रकार अधिकतम 1800 रुपये माहवार पाने वाली आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं की प्रोत्साहन राशि बढ़ाए बिना उनसे यह उम्मीद कैसे की जा सकती है कि वे माताओं को प्रोत्साहित करेंगी और उन्हें सलाह देंगी। आंगनबाड़ी कार्यकर्ता खुद ही बीपीएल रेखा से नीचे रह रही हैं और उन्हें परिवर्तन की संवाहक मानना बेहूदा है।

अधिक महत्वपूर्ण आर्थिक नीतियों और बढ़ती भूख व कुपोषण के बीच के नाजुक रिश्ते को समझना है। भूख दोषपूर्ण आर्थिक नीतियों का परिणाम है, जो संपन्न और वंचितों के बीच की खाई को चौड़ी कर रही हैं। यह उन नीतियों का परिणाम है जो जल, जंगल और कृषि भूमि जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर सामुदायिक नियंत्रण हासिल करती है और यह उन नवउदारवादी नीतियों की उपज है जो सामाजिक दायित्वों से मुंह चुराकर कृषि को उद्योग घरानों को सौंपती हैं।

सरकार जितना अधिक कृषि के बुनियादी आधारों को ध्वस्त करके किसानों को खेती छोड़ने और उन्हें शहर में पलायन करने को मजबूर करेगी, भूख और कुपोषण का कहर उतना ही अधिक विकराल होगा। गरीबों और भूखों की सहानुभूति में केवल जबानी जमाखर्च करने से कुछ नहीं होगा, अगर प्रधानमंत्री वास्तव में कुपोषण से शर्मिंदा हैं तो उन्हें आर्थिक नीतियों में बदलाव कर इन्हें जनवादी और पर्यावरण अनुकूल बनाना होगा। ❑

सदस्यता संबंधी सूचना

मान्यवर,,

स्वदेशी पत्रिका आज देश में चल रहे स्वदेशी आंदोलनों का स्थापित प्रतीक बन चुकी है। पिछले कई वर्षों से स्वदेशी पत्रिका ने असंगत एवं एकतरफा वैश्वीकरण, जनविरोधी आर्थिक उदारीकरण के विरोध एवं वैकल्पिक और रचनात्मक स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में एक सक्रिय प्रहरी के नाते हमेशा आपको जागरूक बनाया है एवं आपसे संवाद स्थापित किया है। विगत कालखंड में इन सभी मुद्दों पर हमें आप जैसे सजग पाठकों का अपेक्षित सहयोग भी मिलता रहा है और भविष्य में भी मिलेगा ऐसा, विश्वास है।

आपसे आग्रह है कि स्वदेशी पत्रिका की आपकी सदस्यता अवधि यदि समाप्त हो गई हो तो कृपया पिछले समय से आगामी वर्ष तक की राशि धनादेश (मनीआर्डर), चेक एवं मांग पत्र (डिमांड ड्राफ्ट) के माध्यम से शीघ्र भेजने की कृपा करें। पत्रिका के लिफाफे के उपर चिपकाए गए पते की प्रथम पंक्ति में सदस्यता अवधि अंकित है। आप अपनी सदस्यता राशि "स्वदेशी पत्रिका" के नाम पत्रिका के कार्यालय के पते पर भेज सकते हैं। सदस्यता अद्यतन न हो पाने की स्थिति में वित्तीय कारणों से पत्रिका आगे जारी रखना कठिन होगा।

सदस्यता शुल्क निम्न प्रकार है।

स्वदेशी पत्रिका	वार्षिक	आजीवन
हिन्दी	100/-	1000/-
अंग्रेजी	100/-	1000/-

हमें आपका सहयोग स्वदेशी आंदोलन को राष्ट्रव्यापी एवं जनोन्मुखी बनाने में प्रमुख भूमिका निभाएगा। कृपया स्वदेशी पत्रिका स्वयं भी पढ़ें एवं अन्य को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। पत्रिका के संबंध मे अपना निष्पक्ष विचार हमें अवश्य भेजें।

पता : स्वदेशी पत्रिका कार्यालय, 'धर्मक्षेत्र' शिव शक्ति मंदिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली–22

आम आदमी बनाम उद्यमी

आम आदमी को पिछले कई वर्षों में जो त्रास दिया जा रहा है, वह तीव्र आर्थिक विकास से कुछ ढक गया था। वैश्विक मंदी के कारण अब इन नीतियों के दुष्प्रभाव पर पर्दा डालना संभव नहीं रह गया है। मेरा तर्क यह नहीं है कि वर्तमान सरकार सर्वत्र जनविरोधी है। वर्तमान सरकार ने ऋण माफी और रोजगार गारंटी कार्यक्रम के माध्यम से आम आदमी को राहत पहुंचाई है, परंतु इससे वर्तमान में लंबित नीतियों का जनविरोधी चरित्र समाप्त नहीं होता है। उद्यमियों द्वारा पॉलिसी पैरालिसिस को उठाया जाना उचित है। लंबित नीतियों के क्रियान्वयन से उद्यमियों को निश्चित तौर पर लाभ कमाने का अवसर मिलेगा। अतः विषय आम आदमी बनाम उद्यमी का बनता है। दोनों प्रमुख पार्टियों कांग्रेस और भाजपा को ऐसा मॉडल बनाना चाहिए कि उद्यमी भी लाभ कमाएं और जनहित भी हासिल हो। यदि ऐसा नहीं होता तो नीतियों का लकवाग्रस्त होना ही उत्तम है।

■ डॉ. भरत झुनझुनवाला

उद्यमियों की शिकायत है कि केंद्र सरकार को लकवा–सा मार गया है। ठोस कदम उठाने में सरकार नाकाम है। कांग्रेस के पास किसी भी सदन में कोई कानून पारित करने की अपनी संख्या नहीं है। सरकार सपा, बसपा, तृणमूल तथा द्रमुक पर निर्भर है। इन सहयोगियों से समर्थन न मिलने के कारण सरकार आगे नहीं बढ़ पा रही है।

विचारणीय विषय है कि सहयोगी पार्टियां सरकार को नए कानून लाने में समर्थन क्यों नहीं दे रही हैं? कारण दिखता है कि सरकार द्वारा प्रस्तावित सुधार मुख्यतः जनविरोधी हैं। गांधी परिवार की धकाचौंध की आड़ में कांग्रेस इन जनविरोधी कानूनों को लागू करने की हिम्मत फिर भी कर सकती है, परंतु सहयोगी पार्टियों के लिए यह कठिन है। अतः सहयोगी पार्टियां पीछे हट रही हैं और सरकार लकवाग्रस्त है।

सरकार द्वारा विदेशी निवेश को खोलने की पहल की गई थी। तृणमूल कांग्रेस के विरोध के कारण सरकार को पीछे हटना पड़ा। तृणमूल ने इस नीति का विरोध किया, चूंकि ममता बनर्जी के आकलन में यह जनविरोधी थी। सही है कि रिटेल में विदेशी कंपनियों के प्रवेश से विदेशी माल कुछ सस्ता उपलब्ध हो जाएगा, परंतु विदेशी माल की खरीद शहरी मध्य वर्ग के लोग अधिक करते हैं, गरीब और ग्रामीण कम। कहा जा रहा है कि विदेशी निवेश से किसानों के लिए नया बाजार खुल जाएगा। यह लाभ कितना होगा इसका कोई ब्यौरा सरकार ने जनता के सामने प्रस्तुत नहीं किया। यह लाभ भी

कहा जा रहा है कि विदेशी निवेश से किसानों के लिए नया बाजार खुल जाएगा। यह लाभ कितना होगा इसका कोई ब्यौरा सरकार ने जनता के सामने प्रस्तुत नहीं किया। यह लाभ भी उन चुनिंदा किसानों को मिलेगा जो बड़ी कंपनियों से अनुबंध करने में सक्षम होंगे। इसके विपरीत विदेशी निवेश से नुक्कड़ की दुकान, ढुलाई, मंडी आदि में लगे तमाम लोगों का रोजगार छिन जाएगा।

तीसरी प्रस्तावित नीति जीएसटी गुड्स एंड सर्विस टैक्स, की है। सरकार चाहती है कि सभी वस्तुओं पर एक ही दर से बिक्री कर लागू किया जाए। इस परिवर्तन के लिए राज्य सरकार की सहमति आवश्यक है चूंकि बिक्री कर उनके द्वारा ही वसूल किया जाता है। आर्थिक विकास की दृष्टि से जीएसटी उपयुक्त है परंतु यह जनविरोधी है। जीएसटी व्यवस्था में गरीब की साइकिल और अमीर की मर्सिडीज कार पर एक ही दर से टैक्स वसूल किया जाएगा।

उन चुनिंदा किसानों को मिलेगा जो बड़ी कंपनियों से अनुबंध करने में सक्षम होंगे। इसके विपरीत विदेशी निवेश से नुक्कड़ की दुकान, दुलाई, मंडी आदि में लगे तमाम लोगों का रोजगार छिन जाएगा।

दूसरी नीति भूमि अधिग्रहण की है। सही है कि वर्तमान कानून की तुलना में प्रस्तावित कानून अच्छा है, परंतु इसमें कई गंभीर खामियां हैं विशेषकर यह कि निजी उद्यमियों द्वारा किसानों की जमीन जबरन छीनी जा सकती है। अतः यह पॉलिसी गरीब किसान के विरोध में अमीर भूमि डेवलपर के पक्ष में है।

तीसरी प्रस्तावित नीति जीएसटी गुड्स एंड सर्विस टैक्स, की है। सरकार चाहती है कि सभी वस्तुओं पर एक ही दर से बिक्री कर लागू किया जाए। इस परिवर्तन के लिए राज्य सरकार की सहमति आवश्यक है चूंकि बिक्री कर उनके द्वारा ही वसूल किया जाता है। आर्थिक विकास की दृष्टि से जीएसटी उपयुक्त है परंतु यह जनविरोधी है। जीएसटी व्यवस्था में गरीब की साइकिल और अमीर की मर्सिडीज कार पर एक ही दर से टैक्स वसूल किया जाएगा। माल का आयात करने वाले कमजोर राज्य जैसे सिक्किम तथा माल का निर्यात करने वाले सुदृढ़ राज्य जैसे महाराष्ट्र को भी एक ही दर से टैक्स वसूल करना होगा। इससे कमजोर राज्यों की स्वायत्तता समाप्त हो जाएगी। चौथी पॉलिसी पेट्रोलियम सब्सिडी की है। सरकार ने पेट्रोल के दाम पर से नियंत्रण हटा लिया है। अब डीजल की बारी है, परंतु डीजल के दाम बढ़ने का प्रभाव सीधा आम आदमी पर पड़ेगा। उसके द्वारा खरीदे गए माल की ढुलाई बढ़ेगी और उसे दाम ज्यादा देना होगा। मैं डीजल के दाम की वृद्धि की वकालत करता हूं, लेकिन साथ-साथ आम आदमी पर पड़ने वाले भार की भरपाई की भी वकालत करता हूं। सरकार आम आदमी द्वारा खरीदी गई वस्तुओं पर टैक्स घटाने को तैयार नहीं है परंतु उस पर डीजल का भार बढ़ाने को तैयार है।

लकवाग्रस्त पांचवीं पॉलिसी विनिवेश की है। आर्थिक सुधारों का मूल सिद्धांत है कि व्यापार में सरकार की भूमिका छोटी होनी चाहिए। सार्वजनिक इकाइयों को निजी उद्यमियों को बेच देना चाहिए जिससे इनके संचालन में मंत्रियों और नौकरशाहों का दखल समाप्त हो जाए। तब सरकार को इनके घाटे की भरपाई के लिए जनता पर टैक्स नहीं लगाना पड़ेगा। सरकार ने निजिकरण के स्थान पर विनिवेश की पॉलिसी बनाई है। सार्वजनिक

शिक्षा का अधिकार तथा भोजन का अधिकार जैसे कानूनों के कार्यान्वयन में कोई विरोध नहीं हुआ। इससे प्रमाणित होता है कि समस्या जनविरोधी नीतियों की है। वैश्विक आर्थिक संकट ने समस्या को ज्यादा गहरा बना दिया है। वैश्विक तेजी के समय देशों में विदेशी निवेश आ रहा था।

इकाइयों की कमान मंत्रियों के ही हाथ में रहेगी। ऊपर से बिक्री किए गए शेयर से मिली रकम से सरकारी खर्चे को पोषित किया जा सकेगा।

छठी पॉलिसी ऊर्जा नाम पर आम आदमी को त्रासदी देने की है। तमिलनाडु में कुडनकुलम परमाणु संयंत्र एवं अरुणाचल में लोअर सियांग जलविद्युत जैसी परियोजनाओं से आम आदमी को त्रास पहुंचता है। इन परियोजनाओं के पर्यावरणीय दुष्प्रभाव स्थानीय लोग झेलते हैं। उत्पादित बिजली को दिल्ली के शॉपिंग माल जगमग करने के लिए भेजा जाता है।

सातवीं पॉलिसी जनलोकपाल कानून के अनकहे विरोध की है। वास्तव में यह कानून कांग्रेस को स्वयं लाना था। ऐसा करने के स्थान पर कांग्रेस इसे उलझाने में लगी हुई है। सरकार नहीं चाहती कि भ्रष्टाचार रोकने में आम आदमी शिरकत कर सके।

उपरोक्त सभी नीतियां आम आदमी के विरुद्ध और अमीरों के लिए हितकारी हैं। इसलिए संप्रग सरकार की सहयोगी पार्टियां इनका विरोध कर रही हैं।

ध्यान दें कि शिक्षा का अधिकार तथा भोजन का अधिकार जैसे कानूनों के कार्यान्वयन में कोई विरोध नहीं हुआ। इससे प्रमाणित होता है कि समस्या जनविरोधी नीतियों की है। वैश्विक आर्थिक संकट ने समस्या को ज्यादा गहरा बना

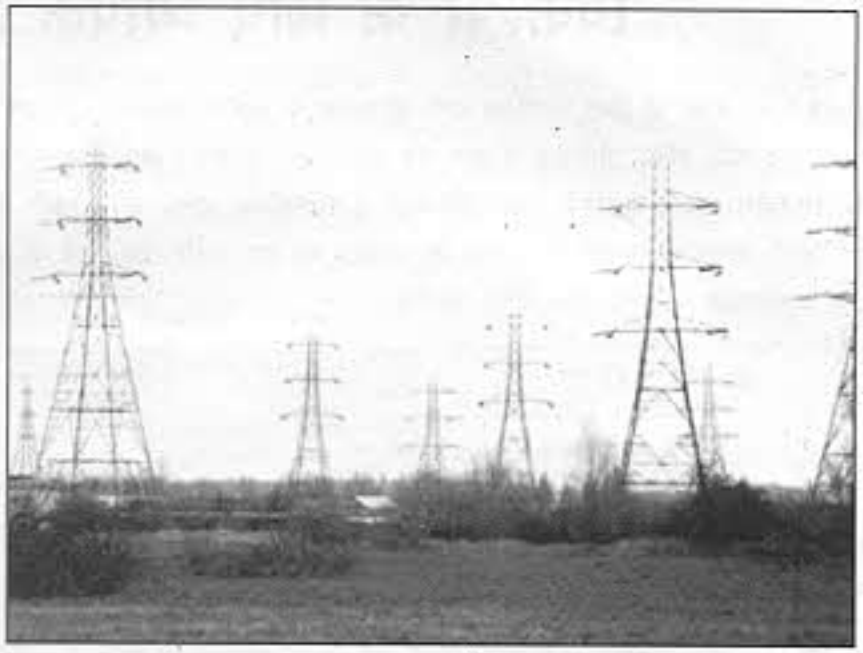

दिया है। वैश्विक तेजी के समय देशों में विदेशी निवेश आ रहा था।

हमारे निर्यात ठीक-ठाक चल रहे थे। ऐसी परिस्थिति में जनविरोधी नीतियों को लागू करने से आम आदमी का जो नुकसान होता है उसकी भरपाई विदेशी निवेश से पैदा हुए रोजगार से हो जाती है। श्रमिक की नौकरी चली जाए पर उसे बेरोजगारी भत्ता मिल जाए तो उसका आक्रोश थम जाता है।

आम आदमी को पिछले कई वर्षों में जो त्रास दिया जा रहा है, वह तीव्र आर्थिक विकास से कुछ ढक गया था। वैश्विक मंदी के कारण अब इन नीतियों के दुष्प्रभाव पर पर्दा डालना संभव नहीं रह गया है। मेरा तर्क यह नहीं है कि वर्तमान सरकार सर्वत्र जनविरोधी है। वर्तमान सरकार ने ऋण माफी और रोजगार गारंटी कार्यक्रम के माध्यम से आम आदमी को राहत पहुंचाई है, परंतु इससे वर्तमान में लंबित नीतियों का जनविरोधी चरित्र समाप्त नहीं होता है। उद्यमियों द्वारा पॉलिसी पैरालिसिस को उठाया जाना उचित है। लंबित नीतियों के क्रियान्वयन से उद्यमियों को निश्चित तौर पर लाभ कमाने का अवसर मिलेगा। अतः विषय आम आदमी बनाम उद्यमी का बनता है। दोनों प्रमुख पार्टियों कांग्रेस और भाजपा को ऐसा मॉडल बनाना चाहिए कि उद्यमी भी लाभ कमाएं और जनहित भी हासिल हो। यदि ऐसा नहीं होता तो नीतियों का लकवाग्रस्त होना ही उत्तम है। ❑

यदि बड़े मल्टी-ब्रांड रिटेल को भारत में प्रवेश की अनुमति दी जाती है, तो उसका बुरा परिणाम होगा। किसी इलाके में एक विशाल रिटेल स्टोर का उद्घाटन, धूमधाम के साथ किया जाएगा। फिर बहुत सारे 'प्रोमोशनल ऑफर' दिए जाएंगे और कई जरूरी सामान अनेक दिनों तक मूल कीमत से भी कम में बेचे जाएंगे। (वालमार्ट की भाषा में इसे 'स्टोम्प द कॉम्प' कहा जाता है, जाहिर अर्थ होता है प्रतिस्पर्द्धा को मिटा देना)। जाहिर है, इस छूट से आकर्षित होकर लोग भारी संख्या में वहां उमड़ पड़ेंगे। ऐसे में, छोटे रिटेलर व्यापार घाटे को बहुत समय तक नहीं उठा पाएंगे। इस झटके की वजह से उनमें से ज्यादातर दुकानें बंद हो जाएंगी। ऐसा निरपवाद रूप से हर जगह हुआ है।

– शेखर स्वामी (खुदरा में विदेशी कंपनियों की अनुमति यानि बर्बादी की दस्तक पुस्तक से)

समीक्षा

विकल्पों के लिए व्यापक आंदोलन

बड़े बदलावों के लिए नागरिक तभी योगदान दे सकेंगे, जब घर–परिवार की स्थिति बेहतर होगी, सामाजिक टूटन नहीं होगा, भेदभाव व द्वेष की सोच नहीं फैलेगी। अतः घर–परिवार, गली– मोहल्ले, गांव–कस्बे के मानवीय संबंध सुधारने, सांप्रदायिकता व सामाजिक टूटन को रोकने के प्रयास व आंदोलन–अभियान भी अपने स्तर पर जरूरी हैं। लिंग के आधार पर या जाति, रंग, धर्म के आधार पर, सब तरह के सामाजिक भेदभाव व अन्याय दूर होना चाहिए।

■ भारत डोगरा

हालिया वर्षों में विश्व के अधिक पढ़ने–सोचने वाले लोगों में उपलब्ध जानकारियों के आधार पर यह समझ बनी कि विश्व स्तर की मौजूदा व्यवस्था जिस तरह चल रही है। उससे पर्यावरण के संकट विशेषकर जलवायु बदलाव का समाधान संभव नहीं है। इस व्यवस्था में बुनियादी बदलाव जरूरी है। इसके बाद जिस तरह का आर्थिक संकट उग्र व व्यापक हुआ, पूंजीवाद के बड़े प्रतीक संस्थान ढहने लगे व गरीब देशों के साथ अमीर देशों के अधिकांश परिवार भी दैनिक जीवन में कठिनाइयां महसूस करने लगे तो मौजूदा आर्थिक व्यवस्था बदलने की चाहत अधिक व्यापक स्तर पर प्रकट हुई।

बढ़ती संख्या में लोग यह सवाल पूछने लगे हैं कि यदि आर्थिक व्यवस्था का मौजूदा मॉडल आज के सबसे अमीर देशों को भी राहत नहीं दे रहा है तो गरीब देशों का क्या भला करेगा? यदि लूटने वाले देशों का भी उद्धार इस मॉडल ने नहीं किया तो लुटे हुए देशों का भला वह कैसे करेगा? आज के दो मुख्य संकटों– आर्थिक और पर्यावरण को सुलझाने के लिए दुनिया ने अगर अगले एक–दो दशक में समुचित प्रयास नहीं किए तो जलवायु बदलाव का मुद्दा हमेशा के लिए हमारे नियंत्रण से बाहर निकल सकता है।

अब आगे सवाल यह है कि इन दोनों मुख्य संकटों – आर्थिक और पर्यावरण – को सुलझाने के लिए दुनिया क्या करे?

यदि पर्यावरण का संकट न होता और केवल आर्थिक संकट से जूझना होता तो यह अपेक्षाकृत सरल कार्य था। लेकिन हकीकत यह है कि पर्यावरण संकट इतने गंभीर रूप में अब उपस्थित है, जितना पहले कभी नहीं था। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यदि अगले एक–दो दशक में इसे सुलझाने का समुचित प्रयास दुनिया नहीं कर सकी तो हमेशा के लिए जलवायु बदलाव का मुद्दा नियंत्रण से बाहर निकल सकता है।

इस दृष्टि से देखा जाए तो अगले

बढ़ती संख्या में लोग यह सवाल पूछने लगे हैं कि यदि आर्थिक व्यवस्था का मौजूदा मॉडल आज के सबसे अमीर देशों को भी राहत नहीं दे रहा है तो गरीब देशों का क्या भला करेगा? यदि लूटने वाले देशों का भी उद्धार इस मॉडल ने नहीं किया तो लुटे हुए देशों का भला वह कैसे करेगा?

एक–दो दशक का समय धरती के इतिहास का सबसे महत्त्वपूर्ण समय माना जा सकता है।

बड़ा सवाल यह है कि क्या दुनिया अपनी इस इतनी बड़ी जिम्मेदारी के प्रति सचेत है? क्या उसने इतना बड़ा उत्तरदायित्व संभालने की तैयारी की है ताकि हमारी भावी पीढ़ियों, हमारे बच्चों और आगे उनके बच्चों का जीवन सुरक्षित रहे? ऐसी ही एक अन्य चुनौती महाविनाशक हथियारों को धरती से समाप्त करने की है। क्या इस दिशा में दुनिया के वर्तमान नेतृत्व ने महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं।

गहरे दुख की बात है कि इन सवालों के जवाब नकारात्मक हैं। इन सबसे बड़े मुद्दों पर विश्व नेतृत्व की विफलता के कारण ही अब विश्व स्तर पर एक बहुत व्यापक अहिंसक जन आंदोलन की जरूरत बहुत बढ़ गई है। ऐसा आंदोलन ही ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकेगा कि विश्व व्यवस्था को न्यायसंगत बनाने के साथ दुनिया को बचाने के जो उपाय जरूरी हैं, उन्हें अगले दशक में अपनाया जा सके। जिस वैकल्पिक व्यवस्था की यहां बात हो रही है, उसकी पहली प्राथमिकता यह होगी कि जलवायु बदलाव व पर्यावरण के संकट को नियंत्रण से बाहर जाने से रोकने के लिए जरूरी कदम जैसे ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन में समुचित कदम समय पर उठा लिए जाएं।

यह पहली प्राथमिकता इस कारण कही जा रही है क्योंकि इसके लिए समय बहुत कम बचा है। पर इसके साथ दुनिया के सभी लोगों के लिए ऐसी न्यायसंगत आर्थिक व्यवस्था के लक्ष्य को जोड़ना बहुत जरूरी है जिसमें सभी लोगों की बुनियादी जरूरतें पूरी हों व आजीविका सुरक्षित हो।

यह बात इसलिए शायनेखेज है कि कुछ वर्षों में आजीविका पर चोट ज्यादा पड़ने लगी है। दूसरे शब्दों में, हमें समय रहते ग्रीनहाऊस गैसों के उत्सर्जन में भारी कमी लानी है तथा साथ ही यह सुनिश्चित करना है कि इसके बावजूद दुनिया में सभी लोगों की बुनियादी जरूरतें पूरी हो सकें।

इन दोनों लक्ष्यों का मिलन तभी संभव है यदि कुछ गैर जरूरी उत्पादों में कमी लाई जाए। किसी की भलाई पर प्रतिकूल असर डाले बिना सभी तरह के हथियारों के उत्पादन को कम किया जा सकता है, नशे के सब पदार्थ, अनेक खतरनाक उत्पादों तथा साथ ही विलासिता के अनेक उत्पादों को कम किया जा सकता है।

दूसरी ओर, ऊर्जा के अक्षय स्रोतों को जीवाश्म ईंधन के स्थान पर बढ़ाया जा सकता है। साथ ही ऊर्जा संरक्षण के तमाम उपाय और गंभीरता से अपनाए जा सकते हैं। इस तरह, ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन को कम रखते हुए भी लोगों की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लक्ष्य प्राप्त किए जा सकते हैं।

इस कार्यक्रम को संक्षेप में बताएं तो कहेंगे कि हमें समता, सच्चाई और अहिंसा की राह अपनानी है। समाजवाद हमें

बड़ा सवाल यह है कि क्या दुनिया अपनी इस इतनी बड़ी जिम्मेदारी के प्रति सचेत है? क्या उसने इतना बड़ा उत्तरदायित्व संभालने की तैयारी की है ताकि हमारी भावी पीढ़ियों, हमारे बच्चों और आगे उनके बच्चों का जीवन सुरक्षित रहे? ऐसी ही एक अन्य चुनौती महाविनाशक हथियारों को धरती से समाप्त करने की है। क्या इस दिशा में दुनिया के वर्तमान नेतृत्व ने महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं।

समता की ओर ले जाता है, शांति आंदोलन हमें हथियारों से मुक्त होने में मदद करता है और आध्यात्मिकता से सच्चाई व संयम की बुनियाद तैयार होती है।

इस तरह कई स्तरों पर वैकल्पिक व्यवस्था के प्रयास चाहिए जो पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों की सोच से अलग हैं। इतने बड़े बदलावों को लोकतांत्रिक व्यवस्था में लाने के लिए जरूरी है कि लोकतंत्र में कई सुधार करने होंगे।

भ्रष्टाचार को दूर करना होगा। अतः लोकतांत्रिक सुधारों और भ्रष्टाचार दूर करने के और हर स्तर पर पारदर्शिता, विकेन्द्रीकरण तथा जन-भागीदारी लाने के आंदोलन अपनी जगह पर जरूरी हैं।

इतने बड़े बदलावों के लिए नागरिक तभी योगदान दे सकेंगे, जब घर-परिवार की स्थिति बेहतर होगी, सामाजिक टूटन नहीं होगा, भेदभाव व द्वेष की सोच नहीं फैलेगी।

अतः घर-परिवार, गली-मोहल्ले, गांव-कस्बे के मानवीय संबंध सुधारने, साम्प्रदायिकता व सामाजिक टूटन को रोकने के प्रयास व आंदोलन-अभियान भी अपने स्तर पर जरूरी हैं। लिंग के आधार पर या जाति, रंग, धर्म के आधार पर, सब तरह के सामाजिक भेदभाव व अन्याय दूर होना चाहिए।

वैसे भी नई दुनिया को बनाने में अब तक के उपेक्षित और वंचित लोगों की ही अधिक उत्साहवर्धक भूमिका होगी। वैसे भी यह काम इसी स्तर के तबकों द्वारा किए जाने का इतिहास रहा है।

यह बात हमें स्पष्ट कर लेनी चाहिए कि धरती केवल मनुष्य के लिए ही नहीं है। जलवायु बदलाव जैसे संकट के दौर में यह और भी जरूरी हो जाता है कि सभी पशु-पक्षियों, जीव-जंतुओं के अस्तित्व और भलाई का पूरा ध्यान रखा जाए-फिर चाहे वे पालतू पशु-पक्षी हैं या वन्य जीव, समुद्र में रहते हों या नदियों में या जमीन पर।

इस तरह, वैकल्पिक समाज बनाने का प्रयास कई स्तरों पर करना होगा और जो ईमानदार आंदोलन व अभियान अभी से चल रहे हैं, उन सभी का इसमें सार्थक योगदान हो सकता है। बहुत से छोटे-बड़े सार्थक प्रयास दुनिया में, देश में पहले से हो रहे हैं और आपसी समन्वय, एकता से भी इनकी ताकत काफी बढ़ सकती है।

पर एक बड़े लक्ष्यों, देश-दुनिया के स्तर के लक्ष्यों से छोटे स्तर के आंदोलनों को जोड़ने के प्रयास के बिना केवल छोटे प्रयास वैकल्पिक समाज की दिशा में बहुत आगे नहीं बढ़ सकेंगे।

पहले और अब की स्थिति के बारे में एक बड़ा फर्क आज यह है कि जलवायु बदलाव के गहराते संकट और महाविनाशक हथियारों की मौजूदगी जैसी विशेष प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण अब हमारे पास अधिक वक्त नहीं बचा है। इस स्थिति में वैकल्पिक समाज की सोच व इसकी ओर बढ़ने की रणनीति बनाने वाले प्रयास बहुत महत्त्वपूर्ण हो गए हैं। इसके बारे में बहुत सावधानी की जरूरत है कि भटकाव न हो और छोटे-मोटे मुद्दों को बड़ा बनाकर मूल्यवान समय न गंवाया जाए।

सार्थक बदलाव की ताकतों के सीमित संसाधनों व ताकत का बेहतर से बेहतर उपयोग व्यापक उद्देश्यों के लिए हो सके, यह बहुत जरूरी है। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि आंदोलन और अभियान में निरंतरता बनी रहे।

मूल सुधार का समय हाथ से निकलता जा रहा है और समय का दबाव इतना है कि आंदोलनकारी सहज छोटी-मोटी सफलताओं से संतोष कर नहीं बैठ सकते हैं। उन्हें संतुष्ट होकर बैठ भी नहीं जाना चाहिए। बेशक आंदोलन में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं पर एक ऐसी निरंतरता बनाए रखना जरूरी है जिससे नए साथी प्रेरित होकर इस सार्थक व आवश्यक बदलावों की प्रक्रियाओं से जुड़ते चलें। ❑

नौकरशाही को कैसे सुधारे..?

अनुभवी अफसर नए मंत्रियों को भ्रष्टाचार की सूक्ष्म तकनीकों से अवगत करवाते हैं। जब मंत्री भ्रष्टाचार करने लगता है तो फिर उसका 'गुरु' अफसर भी हाथ साफ करने लगता है। अफसर मंत्री को भी पीछे छोड़ देता है, क्योंकि उसे किसी का डर नहीं होता। न तो उसे चुनाव लड़ना होता है और न ही विरोधी दल के नेता उसकी टांग खींचते हैं। वह अपने मंत्री से अधिक सुरक्षित होता है। उसके पकड़े जाने की संभावना भी कम ही होती है. . .

■ डा. वेद प्रताप वैदिक

उत्तरप्रदेश में हुए 50 अरब रुपए के घोटाले के कारण तीन अफसरों की हत्या हो गई और एक अफसर ने आत्महत्या कर ली। इतनी दुखद खबर पर भी देश में कोई प्रतिक्रिया नहीं है। ऐसा क्यों हो रहा है और इसको रोकने के उपाय क्या है, इस पर कोई नहीं सोच रहा है। जब कार्य पर ही कोई प्रतिक्रिया नहीं है तो कारण में उतरने का कष्ट कोई क्यों उठाएगा?

हम इसका कारण खोजने की कोशिश करेंगे और उसमें से उपाय भी अपने आप निकलेंगे। सबसे पहली बात तो यह है कि हमारे अफसर कितने ही योग्य और ईमानदार हों, पहले दिन से ही उन्हे चापलूस बनना सिखा दिया जाता है। वे अयोग्य और बेईमान मंत्रियों की खुशामद को अपना ब्रह्मास्त्र बना लेते हैं। वे अपनी निष्ठा संविधान, राष्ट्र, सरकार और जनता की बजाय मंत्रियों के पास गिरवी रख देते हैं। वे उनके इशारों पर नाचते हैं, अनुभवी अफसर नए मंत्रियों को भ्रष्टाचार की सूक्ष्म तकनीकों से अवगत करवाते हैं। जब मंत्री भ्रष्टाचार करने लगता है तो फिर उसका 'गुरु' अफसर भी हाथ साफ करने लगता है।

अफसर मंत्री को भी पीछे छोड़ देता है, क्योंकि उसे किसी का डर नहीं होता। न तो उसे चुनाव लड़ना होता है और न ही विरोधी दल के नेता उसकी टांग खींचते है। वह अपने मंत्री से अधिक सुरक्षित होता है। उसके पकड़े जाने की संभावना भी कम ही होती है, क्योंकि पकड़नेवाले भी तो अफसर ही होते हैं। तो फिर अफसरों की हत्या और आत्महत्या की खबरें क्यों आती हैं? कोई प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री या मंत्री तो आत्महत्या नहीं करता! अफसर क्यों मारे जाते हैं, क्योंकि उन्हें सारे राज पता होते हैं। अगर वे जिंदा रहें तो सारे नेता फंस सकते हैं। वे आत्महत्या इसलिए कर लेते हैं कि बेकसूर होते हुए भी नेताओं की करतूतों के कारण वे बदनाम हो जाते हैं। उनकी खाल नेताओं की तरह मोटी नहीं होती।

लेकिन इसके लिए जिम्मेदार कौन है? इसकी शत प्रतिशत जिम्मेदारी अफसरों की ही है। वे खुशामद क्यों करते हैं? वे हर मुद्दे पर साफ बात क्यों नहीं करते? यदि मंत्री उन्हें दबाए तो वे विरोधी दलों और

प्रत्येक सरकारी कर्मचारी और उसके परिजन की चल–अचल संपत्तियों का ब्यौरा हर साल सार्वजनिक किया जाए। भ्रष्ट अफसरों की संपत्तियों तत्काल जब्त किया जाए और उन्हें आम जनता के मुकाबले ज्यादा कठोर सजा दी जाए।

अखबारों से संपर्क क्यों नहीं करते? वे कोई भी गैर–कानूनी काम क्यों करते हैं? उन्हें पता होना चाहिए कि सूचना के अधिकार और जवाबदेही चार्टर के कारण अब पहले की तरह भ्रष्टाचार को छुपाना आसान नहीं रह गया है। वे अपनी गर्दन नेताओं के लिए क्यों नपवाएं?

वे चाहे तो पूरे जीवन बेधड़क काम कर सकते हैं, नेता उनका क्या कर लेगा? कोई मंत्री ज्यादा से ज्यादा यही कर सकता है ना, कि वह टेढे अफसर का तबादला कर दे, उसकी गोपनीय रपट बिगाड़ दे या उसकी पदोन्नति रोक दे। यदि वह ऐसा करे तो अफसर के पास अपनी रक्षा के अनेक उपाय हैं। वे अदालत की मदद भी ले सकते हैं और स्वच्छ छवि के अफसरों पर हाथ डालना यों भी काफी मुश्किल होता है। नेता जानते हैं कि ऐसा करने पर उनकी अपनी छवि खराब हो जाएगी।

यह जानते हुए भी नौकरशाह लोग भ्रष्टाचार में नेताओं को भी मात कर देते हैं। आजकल मध्यप्रदेश और बिहार में क्लर्कों और चपरासियों के घरों से करोड़ों रुपए की संपत्तियां पकड़ी जा रही हैं। हमें यह मानकर चलना चाहिए कि भारत की नौकरशाही अपने आप नहीं सुधरेगी। नेतागण भी उसे नहीं सुधार पाएंगे।

तो असली प्रश्न यह है कि नौकरशाही को कैसे सुधारा जाए? सबसे पहले तो उसके औपनिवेशिक ढांचे को तत्काल तोड़ा जाए। उसका नाम बदला जाए। उसे भारतीय प्रशासनिक सेवा (इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस) कहना बंद किया जाए। उसे भारतीय लोक सेवा (इंडियन पब्लिक सर्विस) कहा जाए। आईएएस नहीं, उन्हें आईपीएस कहा जाए। किसी भी लोक सेवक को अपने दफ्तरी काम–काज में अंग्रेजी का इस्तेमाल बिल्कुल न करने दिया जाए। यदि वह अंग्रेजी का इस्तेमाल करे तो उसे कम से कम एक माह की सजा दी जाए और उसकी एक माह की वेतन काट ली जाए। किसी भी 'लोकसेवक' को कोट–पैंट और टाई नहीं पहनने दी जाए। जो भी लोक–सेवक भाषा और भूषा के मामले में अंग्रेज की नकल करे, उसे प्रतीकात्मक सजा अवश्य दी जाए। उनके लिए लोकभाषा और लोकभूषा को अनिवार्य किया जाए। ऐसा करने से उनकी अकड़ और जनता से उनकी दूरी अपने आप घटेगी।

सरकारी नौकरियों में से आरक्षण बिल्कुल खत्म किया जाए। आरक्षण सिर्फ शिक्षा में हो। योग्यता के सवाल पर कोई लिहाज–मुरव्वत न हो। सरकार की भर्ती–परीक्षाओं में भी बुनियादी सुधारों की जरूरत है। विशिष्ट योग्य लोगों को उच्च पदों पर सीधे नियुक्त किया जाए। यदि हमारे लोक–सेवक सुधर जाएंगे तो वे हमारे नेतारूपी मदमस्त हाथियों पर अंकुश की तरह काम करेंगे।

दूसरा, लोकसेवा का कोई भी पद स्थायी न हो। हर पांच साल में हर सरकारी कर्मचारी की दुबारा नियुक्ति पर विचार किया जाए। दुबारा नियुक्ति और पदोन्नति के लिए ठोस आधार तय किए जाएं।

तीसरा, किसी भी सरकारी कर्मचारी को सेवानिवृत्त होने के बाद पांच साल तक किसी भी सरकारी या राजनीतिक पद पर नियुक्त न किया जाए। खासतौर से न्यायाधीशों को! यह भी देखा जाए कि गैर–सरकारी क्षेत्रों में वे ऐसी कंपनियों के साथ नत्थी न हो पाए जिनका संबंध उनके विभागों से रहा हो।

चौथा, कर्मचारियों को सरकारी मकान और वाहन की सुविधा न दी जाए। वाहन की सुविधा सिर्फ दफ्तरी काम–काज के लिए हो।

पांचवा, प्रत्येक सरकारी कर्मचारी और उसके परिजन की चल–अचल संपत्तियों का ब्यौरा हर साल सार्वजनिक किया जाए। भ्रष्ट अफसरों की संपत्तियां तत्काल जब्त किया जाए और उन्हें आम जनता के मुकाबले ज्यादा कठोर सजा दी जाए।

छठा, हर कर्मचारी की जनता के प्रति जवाबदेही दो–टूक शब्दों में दर्ज की जाए। यदि निश्चित समय में वह पूरी नहीं की जाए तो उसे उचित हर्जाना देना पड़े।

सातवां, अफसरों के पदों के नाम बदले जाएं। उन्हें अफसर या अधिकारी कहना बंद करें। उनके अधिकारों की बजाय उनके कर्तव्यों पर जोर दिया जाए। उन्हें लोक–सेवक कहा जाए। सेक्रेटरी, कलेक्टर, कमिश्नर – ये शब्द भद्दे हैं, अलोकतांत्रिक हैं, औपनिवेशिक हैं। ये शब्द सीक्रेट, कलेक्ट, कमीशन आदि से बने हैं जो कि औपनिवेशिक और जन–विरोधी हैं। इनकी जगह लोकभाषा के सार्थक शब्द गढ़े जाएं।

आठवां, सरकारी नौकरियों में से आरक्षण बिल्कुल खत्म किया जाए। आरक्षण सिर्फ शिक्षा में हो। योग्यता के सवाल पर कोई लिहाज–मुरव्वत न हो। सरकार की भर्ती–परीक्षाओं में भी बुनियादी सुधारों की जरूरत है। विशिष्ट योग्य लोगों को उच्च पदों पर सीधे नियुक्त किया जाए। यदि हमारे लोक–सेवक सुधर जाएंगे तो वे हमारे नेतारूपी मदमस्त हाथियों पर अंकुश की तरह काम करेंगे। ❑

भ्रष्टाचार, काला धन और दोस्ताना पूंजीवाद

औद्योगिक उत्पादों के लिए बाजार बनाया जा सके और आजीविका पाए लोग खाद्यान्न सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं और पोषण के अधिकार के उपयोग कर सकें। बिना किसी भय के लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में भाग ले सकें। यह भांति-भांति के नुकसानों, जो काले धन, याराना पूंजीवाद और व्यापक पैमाने के भ्रष्टाचार के जरिए हमारे लोकतंत्र को विरूपित कर रहा है, उनकी भरपाई करने में मददगार होगा।

■ कमल नयन काबरा

यह कड़वी और त्रासद वास्तविकता है कि काले धन की अर्थव्यवस्था, याराना पूंजीवाद और भ्रष्टाचार का कैंसर सरकार के कामकाज तथा विपणन संस्थाओं, खास कर निगम, में फैलता जा रहा है। अब इसका अनुपात उस हद तक बढ़ गया है कि जहां हमारे लोगों के समूचे सामाजिक अस्तित्व को अपनी चपेट में लेता प्रतीत होता है। निश्चित रूप से थोड़े से लोग इस गहरी जड़ें जमा चुके कदाचार के अपराधी और उससे लाभान्वित होने वाले हैं जबकि बहुसंख्यक इससे बाहर है और वह सामाजिक रूप से उनके भेदभाव के शिकार हैं।

यह दावा करना तो गैरजवाबदेही की हद है कि लगभग हरेक भारतीय का थोड़ा या बहुत इन अवैध गतिविधियों में सक्रिय रूप से संलिप्तता के चलते हमारी अर्थव्यवस्था के विनाश का कारण बन गया है। राजनीतिक, सामाजिक क्षेत्रों के बाद अब तो धार्मिक-आध्यात्मिक क्षेत्र को भी इसने अपनी जद में ले लिया है। यह सिरे से ही समझ से परे है कि देश की दो तिहाई आबादी जो किसी तरह अपना अस्तित्व बचाने के प्रबंध में लगी हुई है, वह भी इन अधम गतिविधियों की सक्रिय खिलाड़ी है, जिसका एक मात्र मकसद ही बेशुमार दौलत, विशेषाधिकार और ताकत हथियाना है।

अन्ना आंदोलन के विद्युत स्फुलिंग ने इन मामलों को केंद्र में ला दिया है। कम से कम इस साल ठीक तरीके से देखा जा सकता है कि जनता का चुप्पा गुस्सा, अंतर्वर्ती स्तर पर अधिक तेजी से किस तरह से प्रकट होता है और कुछ ठोस उपचारात्मक स्वरूप लेता है।

यद्यपि वर्तमान स्थिति अंतर्निहित तौर पर भारी मात्रा में उस बुराई की फैलती जड़ से प्रभावित है, जिसके विरुद्ध जन आवाज सुने जाने के लिए जद्दोजहद कर रही है और जिसके कुछ उपचार के लिए लोगों के बड़े स्तर पर मांग की जा रही है। इसलिए लोकतंत्र की प्रक्रियाएं और उनके विकास के समक्ष ऐसे कठोर जकड़नों से निकलने की विकट चुनौती दरपेश है। भ्रष्टाचार (काले धन, दोस्ताना पूंजीवाद और समूचा गढ़ जो इन बीमारियों

हरेक भारतीय का थोड़ा या बहुत इन अवैध गतिविधियों में सक्रिय रूप से संलिप्तता के चलते हमारी अर्थव्यवस्था के विनाश का कारण बन गया है। राजनीतिक, सामाजिक क्षेत्रों के बाद अब तो धार्मिक-आध्यात्मिक क्षेत्र को भी इसने अपनी जद में ले लिया है। यह सिरे से ही समझ से परे है कि देश की दो तिहाई आबादी जो किसी तरह अपना अस्तित्व बचाने के प्रबंध में लगी हुई है. . .

को जन्म देते और उन्हें फैलाते हैं) के विरुद्ध आंदोलन से पैदा हुए व्यापक जन उत्साह को मौजूदा सत्ताधारी और दबंग तबकों द्वारा बेहद धूर्तता से कुछ चुनिंदा आयामों की तरफ मोड़ा जा सकता है और पूरी बहस तथा क्रिया–कलाप को विकृत किया जा सकता है।

यह सच है कि तमाम विद्रूपण और हमारे लोकतंत्र तथा विकास की बहुआयामी परिदृश्य के विरूपण, को बेहद थोड़े में मुश्किल से ही समेटा जा सकता है। दरअसल, ये परिदृश्य अनिवार्यतः सामाजिक के अपराध हैं, जिन्हें सार्वजनिक स्तर या अधिकार क्षेत्र में सरकारी एजेंसियों और अधिकारी–कर्मचारियों सदस्यों के लिए हैं।

निश्चित रूप से राज्य और विपणन क्षेत्र के अधिकार सशक्त और सुस्पष्ट नहीं हैं और ऐसे में दोनों के बीच जुड़ाव को एक दूसरे द्वारा आच्छादित कर लिया जाना अवश्यभावी है। भ्रष्टाचार, काले धन और दोस्ताना पूंजीवाद का स्वरूप राज्य और बाजार के शीर्ष धुरंधरों की सांठगांठ से उभरता है क्योंकि कुछ क्षमतावान (संसाधन, प्रभाव, सामान्य मेलजोल आदि के लिहाज से) सूचना और दखल के चलते वे उपभोग के तरीके हासिल कर लेते हैं, जिन्हें वे करना चाहते द्वारा किए जाते हैं।

अधिकारी–कर्मचारियों का राज्यों के उन संसाधनों पर अधिकार होता है और वे सामाजिक जवाबदेहियों को सुनिश्चित करने और उन्हें पूरा करने के अधिकारों से सम्पन्न होते हैं और बाजार क्षेत्र में अधिकार मिले होते हैं। पारस्परिकता, विनिमय और पुनर्वितरण प्रणाली की उपयोगिता के संदर्भ में राज्य और विपणन क्षेत्र (हम यहां सरलीकरण की खातिर और अन्यान्यों की महत्ता को कम न आंकते हुए

वर्तमान गैर राज्य और गैर बाजार क्षेत्रों का उल्लेख नहीं कर रहे हैं) समाज के सभी है, चाहे वह दूसरों के अधिकार या हक की कीमत पर क्यों न हो?

ये लोग आर्थिक, राजनीति और संस्कृति के विरूपण अपराधी और उनसे लाभ उठाने वाले हैं। दूसरी ओर, जनता का इस लिहाज से गंभीर नुकसान होता है और उनके बुरे प्रभावों को वह चुपचाप झेलते रहने पर मजबूर होती है।

इसका उपेक्षित पहलू यह है कि काले धन और भ्रष्टाचार के विरुद्ध पहचान की चयनात्मकता और अभियान का सारा ध्यान इस पर केंद्रित कर दिया गया है कि जैसे राज्य की एजेंसियां और उनके अधिकारी–कर्मचारी ही इसके एकमात्र दोषी हैं। यह भुला दिया गया है कि नैगम व्यवसाय भी सार्वजनिक एजेंसियां ही हैं जो लोगों के मरोसे से छल करते हैं और उन्हें न्यासी के रूप में विश्वास कर सौंपे गए संसाधनों का गैर कानूनी, अकानूनी या अन्यान्य तरीकों से दुरुपयोग करते हैं।

ये लोगों की अनिवार्य आवश्यकताओं की आपूर्ति सुनिश्चित करने के अच्छे और ठोस सामाजिक उद्यम में कम्पनी के संसाधनों के उपयोग के बजाए उनके दुरुपयोग द्वारा लोकतांत्रिक–राजनीतिक प्रणाली को विकृत करने वाली मुख्य एजेंसियां हैं। इसी प्रकार, लाभान्वित और पीड़ित यद्यपि व्यक्ति और पारिवारिक लोग होते हैं, लेकिन वह एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन प्रक्रियाओं की गत्यात्मकता के खुलाव के परिणामस्वरूप ही, बाद में इस राजनीतिक कार्मिक और प्रक्रियाओं का व्यापारिक प्रक्रियाओं और संगठनों से कामकाजी स्तर पर मिलाप हो गया।

हालांकि राजनीतिक क्षेत्र के व्यक्तियों और व्यवसाय या नैगम के व्यक्तियों के बीच व्यक्तिगत संबंध गुप्त रखे जाते हैं और लोकतांत्रिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं के हिस्से के रूप में छद्म आवरण दिए जाते हैं।

उपरोक्त तथ्यों के आलोक में, यह दावा करना संभव प्रतीत होता है कि 2012 देश के आमूल परिवर्तन का नेतृत्व करे।

अनुचित और गुमराह करने वाली समझदारी पर आधारित कार्रवाई का अर्थ कार्रवाई न करने से भी खराब होगा। स्थिति की समझदारी को कार्रवाई से जोड़े बिना, उस बुराई को बनाए रखने का नुस्खा हो सकता है, जिससे हम अब तक पीड़ित होते रहे हैं। इसके विरुद्ध या इसके प्रति लोगों की नाराजगी और लामबंदी के सही और गलत अभियान सार्थक मंच पर पहुंचते लगते हैं। इन प्रक्रियाओं के सार्थक वास्तविक प्रारंभ के लिए न कि उस अवास्तविक शुरुआत के लिए जिसके हम सब अतीत में साक्षी रहे हैं, जो किए जा सकते हैं और किए जाने भी चाहिए उन्हें साराशत: निम्नांकित रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं :– दंडात्मक उपायों को बिल्कुल अपरिहार्य बनाते हुए किन्हीं स्वतंत्र एजेंसियों से हिसाबों का मुंह मिलवाया जाए और याराना पूंजीवाद की तरह आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में घपले करने वालों को शीघ्रता से दंडित किया जाना, निरोधात्मक उपायों का हिस्सा हो सकता है।

नैगम मामलों को न्यास के सच्चे अर्थ में प्रतिबिम्बन के लिए नया कम्पनी कानून बनाना चाहिए जो पारदर्शी कार्यप्रणाली (केवल तकनीक से संबंधी व्यवसाय की गोपनीयता को छोड़कर) के जरिए प्रवर्तकों और प्रबंधकों में पुनर्विश्वास की बहाली करे। नियमों के उल्लंघन करने वालों को कड़ा दंड देने के लिए लोकपाल को अधिकार और स्वतंत्रता दिया जाए।

संक्षेप में, कम्पनी क्षेत्र सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा है और वह निजी या पारिवारिक जागीर नहीं है। ऐसे कानूनों के दायरे में राजनीतिक दलों और उनके कामकाजों को ले आना भी पारदर्शी और खुले लोकतंत्र के लिए आवश्यक है। बेनामी कानून को भी मजबूती प्रदान करना है। शेयर और वस्तुओं के कारोबार से सट्टेबाजी पर रोक लगाना होगा और सरजमीन पर वास्तविक विकेंद्रित व्यावसायिक गतिविधियों पर जोर देकर इनसे बड़ी पूंजी को बाहर करने के लिए साफ–सुथरी व्यावसायिकता को प्रश्रय देना होगा।

देश में विदेशी निवेश के चलते उनकी आजीविका को होने वाले नुकसान और आय की असमानता की चौड़ी होती खाई को रोकना होगा। इसके साथ ही वैकल्पिक उपायों जैसे किसानों को उनकी पैदावार को सुरक्षित रखने, इनके एवज में कर्ज लेने और बदलते विपणन अवसरों का लाभ दिलाने के लिए पंचायत स्तर पर न्यूनतम समर्थन मूल्य पर गोदामों की सुविधा देनी होगी।

शेयर और वस्तुओं के कारोबार से सट्टेबाजी पर रोक लगाना होगा और सरजमीन पर वास्तविक विकेंद्रित व्यावसायिक गतिविधियों पर जोर देकर इनसे बड़ी पूंजी को बाहर करने के लिए साफ–सुथरी व्यावसायिकता को प्रश्रय देना होगा।

यह महंगाई पर रोक लगाएगी, सार्वजनिक वितरण प्रणाली श्रृंखलाओं को आसान और त्रुटिरहित तरीके से आपूर्ति सुनिश्चित करेगी, किसानों को कर्ज के मकड़जाल में उलझने से रोकेगी और व्यवसाय के क्षेत्र में काली आय के जरिये को समाप्त करेगी। पारस्परिक जवाबदेही के बुनियादी सिद्धांत के आधार पर नैगम क्षेत्रों को करों में समानता विरोधी छूटों पर रोक लगाना होगा ताकि सामाजिक प्रतिदान के संदर्भ में उनका अस्तित्व प्रतिपादित किया जाए न कि याराना पूंजी लॉबिंग के बिना पर।

लोगों के सशक्तीकरण के लिए साल में रोजगार के 200 कार्यदिवस सुनिश्चित किए जाएं, ताकि औद्योगिक उत्पादों के लिए बाजार बनाया जा सके और आजीविका पाए लोग खाद्यान्न सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं और पोषण के अधिकार के उपयोग कर सकें। बिना किसी भय के लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में भाग ले सकें। यह भांति–भांति के नुकसानों, जो काले धन, याराना पूंजीवाद और व्यापक पैमाने के भ्रष्टाचार के जरिए हमारे लोकतंत्र को विरूपित कर रहा है, उनकी भरपाई करने में मददगार होगा। ❑

शहर के पानी की बदबूदार कहानी

अपनी नदियों को इस तरह नालों में तब्दील करने पर भी क्या हमें किसी प्रकार की कोई शर्म आती है? क्या हमें कभी आश्चर्य होता है? हम अपने शहरी घरों और शहरी उद्योगों के लिए इन्ही नदियों से पानी लेते हैं और गंदा करके नदियों को वापस कर देते हैं। अच्छी खासी साफ सुथरी नदी को अपने स्पर्श से हम नाले में तब्दील कर देते हैं। क्या हम शहरी लोग कभी इस बारे में सोचते हैं?

■ सुनीता नारायण

अगर जल जीवन है तो सीवेज इस जीवन की असली कहानी कहता है। स्टेट आफ इंडिया इंवायरमेन्ट रिपोर्ट की सातवीं रिपोर्ट हमारा ध्यान जीवन की इसी कहानी की ओर आकर्षित कर रहा है। रिपोर्ट बता रही है अपनी जरूरतों के लिए कैसे हमारे शहर पानी सोख रहे हैं और नदियों को नष्ट कर रहे हैं। शहरों के पानी के बारे में जानना हो तो सिर्फ इतना पूछना जरूरी होगा कि हमारे शहर पानी पाते कहां से हैं और उनका सीवेज जाता कहां पर है?

शहर में रहने वाले लोगों को पानी उनके घर के अंदर मिल जाता है। वे पानी का उपयोग करने के बाद जो सीवेज निर्मित करते हैं वह नदियों के हवाले कर दिया जाता है जिससे वही नदियां मरने लगती हैं जो शहरों को अपना पानी देकर जीवित रखती हैं। लेकिन हमारा शहरी समाज पानी और नदी के बीच इतना सा भी संबंध जोड़ना नहीं जानता है कि टायलेट फ्लश करने से नदी के मरने का क्या संबंध है?

लेकिन पानी सिर्फ इस एक सवाल जवाब का सवाल नहीं है। सिर्फ प्रदूषण और बर्बादी का भी मसला नहीं है। मसला यह है कि हमारे शहर किस तरह से विकसित हो रहे हैं?

इसमें हमारे किसी भी योजनाकार को कोई शक नहीं है कि शहरीकरण जिस गति से बढ़ रहा है उसमें और अधिक तेजी आएगी। लेकिन इस तेज गति से बढ़ते शहरों को पानी कहां से मिलेगा और वे अपने सीवेज का निष्पादन कैसे करेंगे?

जिस रिपोर्ट का हम यहां जिक्र कर रहे हैं उस रिपोर्ट में सीएसई ने इसी सबसे महत्वपूर्ण सवाल का जवाब तलाशने की कोशिश की है। लेकिन अपनी पड़ताल के दौरान हमें बहुत आश्चर्य हुआ कि इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर देश में न तो कहीं ठीक से डाटा उपलब्ध है, न ही इस बारे में कोई महत्वपूर्ण शोध हुए हैं और सोच के स्तर पर भी गजब का खालीपन है। शहर में रहनेवाले लोगों को पानी उनके घर के अंदर मिल जाता है। वे पानी का उपयोग करने के बाद जो सीवेज निर्मित करते हैं वह नदियों के हवाले कर दिया जाता है जिससे वही नदियां मरने लगती हैं जो शहरों को अपना पानी देकर जीवित रखती हैं। लेकिन हमारा शहरी समाज पानी और नदी के बीच इतना सा भी संबंध जोड़ना नहीं जानता है कि टायलेट फ्लश करने से नदी के मरने का क्या संबंध है? वे जानना तो नहीं चाहते लेकिन उन्हें जानने की जरूरत है।

शहरी समाज की इस लापरवाही का

दिल्ली के लोग नजफगढ़ नाले के बारे में जानते होंगे। यह नजफगढ़ नाला रोजाना शहरी की गंदगी यमुना के हवाले करता है। लेकिन दिल्लीवालों को यह शायद नहीं मालूम है कि इस नाले का उद्गमस्थल शहरी घरों के टायलेट नहीं है बल्कि इसका उद्गम साहिबी झील से होता था। लेकिन अब साहिबी झील का भी कहीं पता नहीं है। कोढ़ में खाज यह है कि दिल्ली के ठीक बगल में आजकल जो नया शहर गुड़गांव दुनिया के सामने अपनी चमक दमक दिखा रहा है वह गुड़गांव साहिबी झील की तर्ज पर ही नजफगढ़ झील को अपने सीवेज से समाप्त कर रहा है।

कारण आखिर क्या है? क्या यह हमारे ऊपर भारतीय जाति व्यवस्था का असर है कि घर से कचरा हटाना हमारा नहीं बल्कि किसी और का काम है? या फिर हम इस बारे में इतने लापरवाह इसलिए हैं क्योंकि हमें लगता है कि यह काम तो सरकार का है इसलिए इस बारे में हमें सोचने की जरूरत नहीं है। या फिर यह भारतीय समाज के अति अहंकार का प्रतीक है जो यह मानता है कि संपन्नता से सभी समस्याओं का समाधान निकाला जा सकता है?

वैसे भी हमारी सरकारें हमें यही सिखाती हैं कि संपन्नता से हम बड़े–बड़े इंफ्रास्ट्रक्चर प्रोजेक्ट तैयार करेंगे और पानी तथा सीवेज की समस्या से निजात पा लेंगे?

हम चाहे जिस रूप में ऐसा व्यवहार कर रहे हों लेकिन एक बात साफ है कि हम भारतीय पानी के बारे में बहुत अज्ञानी हो चले हैं। सीएसई में अपने इस शोध के दौरान हमने शहर दर शहर डाटा तलाशने के लिए ऐसे कार्यालयों के चक्कर लगाये जहां शायद ही कोई शोधार्थी कभी जाता हो। इस किताब में जिन 71 शहरों के बारे में हमने शोध किया है उसमें उस शहर के पानी के वर्तमान की ही कहानी नहीं है बल्कि उस शहर में पानी के अतीत और भविष्य का भी वर्णन है।

नब्बे के दशक में ही पर्यावरणविद अनिल अग्रवाल ने कहा था कि इस देश में कचरा पैदा करने के राजनीतिक अर्थशास्त्र को समझने की जरूरत है जो कि अपनी सुविधा के लिए दूसरे के सिर पर अपनी गंदगी फेंक आता है।

अब जबकि हम गंदगी फेंकने के राजनीतिक अर्थशास्त्र को समझने की कोशिश कर रहे हैं तो एक तथ्य ऐसा उभरकर सामने आ रहा है जो निश्चित रूप से हमें गुस्से से भर देता है।

आज हम अपने शहर में जिसे गंदा नाला कहते हैं, अतीत में अधिकांश ऐसे गंदे नाले नदियां हुआ करती थीं। अपने अध्ययन के दौरान हमारे सामने यह चौंकानेवाला तथ्य सामने आया है। अधिकांश शहरों के आज के गंदे नाले अतीत की साफ नदियां हुआ करती थीं। दिल्ली के लोग नजफगढ़ नाले के बारे में जानते होंगे। यह नजफगढ़ नाला रोजाना शहरी की गंदगी यमुना के हवाले करता है। लेकिन दिल्लीवालों को यह शायद नहीं मालूम है कि इस नाले का उद्गमस्थल शहरी घरों के टायलेट नहीं है बल्कि इसका उद्गम साहिबी झील से होता था।

लेकिन अब साहिबी झील का भी कहीं पता नहीं है। कोढ़ में खाज यह है कि दिल्ली के ठीक बगल में आजकल जो

नया शहर गुड़गांव दुनिया के सामने अपनी चमक दमक दिखा रहा है वह गुड़गांव साहिबी झील की तर्ज पर ही नजफगढ़ झील को अपने सीवेज से समाप्त कर रहा है।

लुधियाना का बुढ्ढा नाला अपनी गंदगी और बदबू के कारण जाना जाता है। लेकिन बहुत वक्त नहीं बीता है जब बुढ्ढा नाला नहीं बल्कि बुढ्ढा दरिया होता था। सिर्फ एक पीढ़ी ने इस साफ पानी के दरिया को गंदे बदबूदार नाले में परिवर्तित कर दिया।

मुंबई की मीठी नदी तो सीधे–सीधे इस शहर के शर्म की कहानी ही कहती है। 2005 में जब मुंबई में बाढ़ आई थी तो अचानक लोगों को मीठी नदी की याद आई। याद इसलिए कि मीठी नदी इतनी अधिक गाद से भरी हुई थी कि वह शहर का पानी समुद्र तक ले जाने में अक्षम साबित हुई। लेकिन इसके लिए मीठी नदी को शर्म करने की जरूरत कतई नहीं है।

मुंबई की मीठी नदी तो सीधे–सीधे इस शहर के शर्म की कहानी ही कहती है। 2005 में जब मुंबई में बाढ़ आई थी तो अचानक लोगों को मीठी नदी की याद आई। याद इसलिए कि मीठी नदी इतनी अधिक गाद से भरी हुई थी कि वह शहर का पानी समुद्र तक ले जाने में अक्षम साबित हुई।

इसके लिए तो मुंबईवालों को शर्म करने की जरूरत है। मीठी नदी आज इतनी गंदी हो चुकी है कि इसे नाले के रूप मे देखा जाता है। लेकिन यह नाला नहीं बल्कि समुद्र के किनारे मीठे पानी की ही नदी थी। लेकिन हमारे सरकारी विभागों के रिकार्ड में भी अब मीठी नदी का नाम नहीं बचा है। वहां भी अब मीठी नदी को नाले के रूप में चिन्हित कर लिया गया है।

अपनी नदियों को इस तरह नालों में तब्दील करने पर भी क्या हमें किसी प्रकार की कोई शर्म आती है? क्या हमें कभी आश्चर्य होता है? हम अपने शहरी घरों और शहरी उद्योगों के लिए इन्हीं नदियों से पानी लेते हैं और गंदा करके नदियों को वापस कर देते हैं। अच्छी खासी साफ सुथरी नदी को अपने स्पर्श से हम नाले में तब्दील कर देते हैं। क्या हम शहरी लोग कभी इस बारे में सोचते हैं?

अगर अब तक हमने नहीं सोचा तो अब हमें सोचने की जरूरत है। अभी भी हमने अपने पानी के व्यवहार के बारे में नहीं सोचा और इसी तरह से नदियों को नालों में बदलते रहे तो बाकी बची हुई नदियां हमारा साथ छोड़ देंगी। आज हम नजफगढ, मीठी नदी और बुढ्ढा नदी को नाले के रूप में देख रहे हैं हमारी आनेवाली पीढ़ियां यमुना, दामोदर और कावेरी नदियों को भी नाले के रूप में पहचानेंगी? क्या हम अपने आनेवाली पीढ़ियों को यही भविष्य देना चाहते हैं? ❑

:: सूचना ::

स्वदेशी पत्रिका सम्राज्यवाद के खिलाफ एक सशक्त आवाज है। पत्रिका को ऐसे लोगों से प्रतिक्रियाएं, रिपोर्ट या आलेख की अपेक्षा है जो राष्ट्रहित में सोचते हैं और देश के स्वावलम्बन के लिए कुछ करने की इच्छा रखते है। जरूरी नहीं कि आप पत्रकार या लेखक ही हों, अपने आसपास से जुड़ी चीजों के प्रति आपकी संवदेना है और आप शब्दों में उसे लिख सकते है तो हमें अवश्य लिख भेजें। साथ ही स्वदेशी पत्रिका में छपे लेख आपको कैसे लगते हैं, क्या आप इसमें कुछ नए विषयों का समायोजन चाहते हैं कृपया हमें अवश्य अवगत कराएं। आपके विचारों को हम प्राथमिकता के साथ प्रकाशित करने का भी प्रयास करेंगे।

हमारा पता है :–

संपादक

स्वदेशी पत्रिका

धर्मक्षेत्र, सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

धर्म राजनीति का गांधी दर्शन

विवेकानंद ने शुद्ध हिंदुत्व को मानव सेवा से जोड़ते हुए कहा – जीव ही शिव है। उन्होंने अपने ही वर्ग से यह सवाल किया कि हमने क्या किया है? हम संन्यासियों यानी ईश्वर के तथाकथित संदेशवाहकों ने साधारण जनता के लिए आखिर किया ही क्या है? गांधीजी ने भी इसी दर्शन को स्वीकार किया और दरिद्र नारायण के रूप में अपना एक अलग विचार विकसित किया। विवेकानंद की तरह उन्होंने भी ईश्वर की सेवा को मानव सेवा से जोड़ा।

■ जगमोहन

स्वामी विवेकानंद की 150वीं जयंती के परिप्रेक्ष्य में यह याद करना उचित होगा कि राष्ट्र के पुनर्जागरण में उनके योगदान को लेकर महर्षि अरविंद ने क्या कहा था। अरविंद के शब्दों में–एक देश को सम्मोहित करने में ब्रिटिश शासन को रिकार्ड सफलता हासिल हुई। उसने हमें इच्छाओं की मृत्यु के साथ जिंदा रहने के लिए राजी कर लिया। सम्मोहन करने वाले को जिस तरह की दूषित कमजोरियों की जरूरत होती है उन्हें हमारे भीतर भरा गया। यह सब तक चलता रहा जब तक उस विशालकाय जादूगर को भी वशीभूत करने वाले विवेकानंद ने भारत की आंखों के सामने अपनी उंगली रखकर यह नहीं कहा – 'जागो'।

दुर्भाग्य से इतिहासकारों ने इस तथ्य की अनदेखी ही कर दी कि विवेकानंद ने भारतीय मस्तिष्क को पुनर्जागृत करने का जो काम किया और भारतीय आत्मा को जिस तरह नया जीवन दिया उससे ही महात्मा गांधी को देश की आजादी के लिए संपूर्ण जनमानस को उद्वेलित करने का आधार मिला।

इसी प्रकार सामाजिक और धार्मिक सुधारों के मामले में भी गांधीजी को विवेकानंद ने जो पृष्ठभूमि उपलब्ध कराई उसकी अपेक्षित चर्चा नहीं हो सकी।

सन 1901 में गांधीजी कांग्रेस सम्मेलन में भाग लेने के लिए कोलकाता का दौरा किया। वह इस दौरान विवेकानंद से मिलने गए, जो उस समय वस्तुत: मृत्यु शैया पर थे। दोनों के बीच क्या बातचीत हुई, इसका कोई रिकार्ड नहीं है, लेकिन यह आसानी से समझा जा सकता है कि दोनों के बीच अस्पृश्यता के मुद्दे पर अवश्य चर्चा हुई होगी।

हाल में जोसेफ लेलीव्ल्ड की ग्रेट सोल शीर्षक से गांधीजी पर जो पुस्तक प्रकाशित हुई है उसमें लिखा गया है – कोलकाता में हुई मुलाकात के बाद गांधीजी ने अपने भाषणों में जब भी विवेकानंद का जिक्र किया तो अस्पृश्यता की बीमारी का उल्लेख अवश्य हुआ। विवेकानंद और गांधीजी, दोनों के पास

विवेकानंद ने 25 दिसंबर 1892 को जो सबसे पहले टिप्पणी की वह इस प्रकार थी – "धर्म राष्ट्र के शरीर का रक्त है। हमारी सभी बड़ी बीमारियों का कारण इस रक्त की अशुद्धता है। यह देश फिर से उभर सकता है यदि इस रक्त को शुद्ध कर दिया जाए।" विवेकानंद ने शुद्ध हिंदुत्व को मानव सेवा से जोड़ते हुए कहा – जीव ही शिव है। उन्होंने अपने ही वर्ग से यह सवाल किया कि हमने क्या किया है? हम संन्यासियों यानी ईश्वर के तथाकथित संदेशवाहकों ने साधारण जनता के लिए आखिर किया ही क्या है?

शक्तिशाली और मौलिक मस्तिष्क था। दोनों को भारतीय संस्कृति की आत्मिक शक्ति पर अटूट विश्वास था। दोनों व्यावहारिक वेदांत पर भरोसा करते थे और उन्होंने हिंदुत्व को सेवा आधारित जीवन दर्शन के रूप में देखा, जिसमें उच्चतम स्तर की नैतिकता और आदर्श हों।

दोनों ने यह सोचा कि आधुनिक व्यक्ति अपने चित्त की वृत्तियों पर बाहरी माध्यमों से जीत हासिल करने की आशा नहीं कर सकता। गांधीजी और विवेकानंद, दोनों का तर्क था कि महान सामाजिक और नैतिक व्यवस्था केवल महान व्यक्तित्वों के कंधों पर ही तैयार की जा सकती है।

अगर आपके दिल में कोई शुद्धता, निष्पक्षता और न्याय नहीं होगा तो ये गुण आपके घर में नहीं आ सकते। अगर ये गुण आपके घर में नहीं होंगे तो वे आपके समाज में भी नहीं होंगे। फिर देश में इन गुणों की अपेक्षा कैसे की जा सकती है?

विवेकानंद और गांधीजी ने जीवन की नई दिशा दी। वे एक ऐसे भारत का निर्माण करना चाहते थे जो दुनिया को सहिष्णुता और विनम्रता का पाठ पढ़ा सके। विवेकानंद के लिए भारत में धर्म मूलभूत शक्ति थी। उन्होंने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति की तरह प्रत्येक राष्ट्र के पास जीवन की एक धुन होती है, जो उसके केंद्र में होती है।

यदि कोई देश इसे अपनी राष्ट्रीय चेतना से बाहर करने की कोशिश करता है तो वह देश नष्ट हो जाता है। पूरे देश में अपने व्यापक भ्रमण और कन्याकुमारी में तीन दिनों के गहन ध्यान के बाद विवेकानंद ने 25 दिसंबर 1892 को जो सबसे पहले टिप्पणी की वह इस प्रकार थी – "धर्म राष्ट्र के शरीर का रक्त है। हमारी सभी बड़ी बीमारियों का कारण इस रक्त की अशुद्धता है। यह देश फिर से उभर सकता है यदि इस रक्त को शुद्ध कर दिया जाए।"

विवेकानंद ने शुद्ध हिंदुत्व को मानव सेवा से जोड़ते हुए कहा – जीव ही शिव है। उन्होंने अपने ही वर्ग से यह सवाल किया कि हमने क्या किया है? हम संन्यासियों यानी ईश्वर के तथाकथित संदेशवाहकों ने साधारण जनता के लिए आखिर किया ही क्या है?

विवेकानंद और गांधीजी ने जीवन की नई दिशा दी। वे एक ऐसे भारत का निर्माण करना चाहते थे जो दुनिया को सहिष्णुता और विनम्रता का पाठ पढ़ा सके। विवेकानंद के लिए भारत में धर्म मूलभूत शक्ति थी। उन्होंने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति की तरह प्रत्येक राष्ट्र के पास जीवन की एक धुन होती है, जो उसके केंद्र में होती है।

गांधीजी ने भी इसी दर्शन को स्वीकार किया और दरिद्र नारायण के रूप में अपना एक अलग विचार विकसित किया। विवेकानंद की तरह उन्होंने भी ईश्वर की सेवा को मानव सेवा से जोड़ा।

डॉ. राधाकृष्णन के एक प्रश्न के जवाब में उन्होंने लिखा कि सच्चा हिंदू धर्म यह है कि हमें अनवरत सेवा में खुद को खपा देना होगा। समाज सेवा से कोई बच नहीं सकता। इससे अलग और इससे अधिक कोई खुशी नहीं है। गांधीजी ने आगे लिखा कि मैं अक्सर अपने धर्म की व्याख्या सत्य के धर्म के रूप में करता हूं। पिछले कुछ समय से यह कहने के बजाय कि ईश्वर सत्य है, मैं यह कहने लगा हूँ कि सत्य ही ईश्वर है।

यद्यपि विवेकानंद एक संन्यासी थे और राजनीति से पूरी तरह दूर रहते थे, लेकिन उन्होंने गांधीजी के लिए यह आधार तैयार किया कि वह राजनीति को धर्म से अलग करने के सुझाव को अस्वीकृत कर दें, क्योंकि उन्होंने लोगों की आजीवन सेवा के माध्यम से सत्य की तलाश के रूप में धर्म को एक नई परिभाषा दी।

यह विवेकानंद के विचारों का ही प्रभाव था कि गांधीजी यह कहने में समर्थ रहे कि जो लोग यह कहते हैं कि धर्म का राजनीति से कुछ लेना–देना नहीं है वे यही नहीं जानते हैं कि धर्म का असली अर्थ क्या है? गांधीजी ने यह भी कहा कि मेरे अंदर के राजनेता को मैं कभी भी अपने निर्णयों पर हावी होने का मौका नहीं देता हूं। यदि मैं राजनीति में भाग लेता नजर आ रहा हूं तो सिर्फ इसलिए, क्योंकि आज राजनीति ने सांप की कुंडली की तरह हमें जकड़ लिया है, जिससे कोई कितनी भी कोशिश कर ले, बचकर नहीं निकल सकता। इसीलिए मैं इस सांप से लड़ना चाहता हूं।

उन्होंने यह भी महसूस किया कि इस सांप से लड़ने का सबसे अच्छा तरीका है वास्तविक धर्म के उच्च आदर्शों को विकसित करना। बार–बार गांधीजी ने यह रेखांकित किया कि सिद्धांतहीन राजनीति मौत के फंदे के समान है, जो राष्ट्र की आत्मा को ही मार डालती है। ❑

विकृत सेक्युलरवाद

भारत के प्रायः सभी प्रमुख शहरों में अवैध बांग्लादेशी घुसपैठियों की बस्ती आबाद है। वोट बैंक की राजनीति करने वाले दल इनके संरक्षक हैं। व्यवस्था में गहरे जड़ें जमा चुके भ्रष्टाचार के कारण ये अवैध घुसपैठिए आसानी से राशन कार्ड और वोटर कार्ड बनवाने में सफल हो जाते हैं। खुद को पश्चिम बंगाल और असम का नागरिक बताने वाले इन घुसपैठियों 'करीब तीन करोड़' में से अधिकांश आपराधिक गतिविधियों में संलग्न हैं तो कुछ पर आतंकी हमलों में शामिल होने का भी आरोप है।

■ बलबीर पुंज

'भारत में अवैध रूप से रह रहे बांग्लादेशी न केवल यहां पर मजे से जीवन व्यतीत कर रहे हैं, बल्कि भारतीय नागरिकों के अधिकारों और सरकारी सुविधाओं का भी भरपूर मात्रा में दोहन कर रहे हैं।' यह बयान सेक्युलरिस्टों द्वारा सांप्रदायिक घोषित भारतीय जनता पार्टी के किसी नेता का नहीं है। यह कटु टिप्पणी बांग्लादेशी नागरिकों द्वारा की गई एक डकैती के सिलसिले में दिल्ली स्थित रोहिणी कोर्ट की अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश कामिनी लॉ ने की है।

उन्होंने सेक्युलर राजनीति की विद्रूपता पर भी कड़ी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा, 'यह देश का दुर्भाग्य है कि देश के नागरिकों को गरीबी का सामना करना पड़ रहा है। अधिकांश लोगों को राशन कार्ड और अन्य सुविधाएं नहीं मिल पातीं, जबकि वोट बैंक की गंदी राजनीति के कारण घुसपैठ कर आए बांग्लादेश के नागरिक स्वयं को यहां का नागरिक साबित करने के लिए राशन कार्ड, वोटर कार्ड एवं अन्य पहचान संबंधी सुविधाएं जल्दी हासिल कर लेते हैं।

ऐसे घुसपैठियों पर सरकार कार्रवाई नहीं कर पाती, क्योंकि वोट बैंक की राजनीति उसके हाथ बांध देती है। इससे पूर्व सर्वोच्च न्यायालय भी अवैध बांग्लादेशी नागरिकों को मिल रहे राजनीतिक संरक्षण पर गंभीर चिंता व्यक्त कर चुका है, किंतु अवसरवादी राजनीति के कारण इस दिशा में अब तक कोई ठोस योजना नजर नहीं आती। क्यों?

सरकार ने कुछ समय पूर्व नागरिकों को बहुउद्देश्यीय 'आधार' कार्ड देने की घोषणा की थी, किंतु इसके लिए जो प्रक्रिया अपनाई गई है उसमें भारत में अवैध रूप से रह रहे बांग्लादेशी घुसपैठियों की पहचान का कोई प्रावधान नहीं रखा गया है। बिना किसी जांच पड़ताल के भारत में रहने वाले लोगों की बायोमीट्रिक सूचनाएं रखने और आधार कार्ड जारी करने से क्या हासिल होगा?

सरकार में मौजूद विरोधाभास का एक और प्रमाण योजना आयोग के 'आधार कार्ड' के बरक्स गृह मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय जनसंख्या निबंधन के आंकड़ों के आधार पर 'स्मार्ट कार्ड' जारी करना है। लक्ष्यविहीन इन योजनाओं पर सार्वजनिक धन की बर्बादी क्यों?

घुसपैठियों पर सरकार कार्रवाई नहीं कर पाती, क्योंकि वोट बैंक की राजनीति उसके हाथ बांध देती है। इससे पूर्व सर्वोच्च न्यायालय भी अवैध बांग्लादेशी नागरिकों को मिल रहे राजनीतिक संरक्षण पर गंभीर चिंता व्यक्त कर चुका है, किंतु अवसरवादी राजनीति के कारण इस दिशा में अब तक कोई ठोस योजना नजर नहीं आती। क्यों?

भारत के प्रायः सभी प्रमुख शहरों में अवैध बांग्लादेशी घुसपैठियों की बस्ती आबाद है। वोट बैंक की राजनीति करने वाले दल इनके संरक्षक हैं। व्यवस्था में गहरे जड़ें जमा चुके भ्रष्टाचार के कारण ये अवैध घुसपैठिए आसानी से राशन कार्ड और वोटर कार्ड बनवाने में सफल हो जाते हैं। खुद को पश्चिम बंगाल और असम का नागरिक बताने वाले इन घुसपैठियों करीब तीन करोड़, में से अधिकांश आपराधिक गतिविधियों में संलग्न हैं तो कुछ पर आतंकी हमलों में शामिल होने का भी आरोप है।

जुलाई, 2008 में गुवाहाटी उच्च न्यायालय ने भी बांग्लादेशी घुसपैठियों पर कड़ी टिप्पणी करते हुए कहा था, 'बांग्लादेशी इस राज्य में किंगमेकर' की भूमिका में आ गए हैं।' यह एक कटु सत्य है और इसके कारण न केवल असम के जनसांख्यिक स्वरूप में तेजी से बदलाव आया है, बल्कि देश के कई अन्य भागों में भी बांग्लादेशी अवैध घुसपैठिए कानून एवं व्यवस्था के लिए गंभीर खतरा बने हुए हैं।

हूजी जैसे आतंकी संगठनों की गतिविधियां इन्हीं बांग्लादेशी घुसपैठियों की मदद से चलने की खुफिया जानकारी होने के बावजूद कुछ सेक्युलर दल बांग्लादेशियों को भारतीय नागरिकता देने की मांग कर रहे हैं। यह कैसी मानसिकता है? अवैध बांग्लादेशी घुसपैठियों को संरक्षण देना और उनके वोट बैंक का दोहन नई बात नहीं है।

पश्चिम बंगाल से चलते हुए उत्तर प्रदेश, बिहार व असम के सीमावर्ती क्षेत्रों में इन अवैध घुसपैठियों के कारण एक स्पष्ट भूपट्टी विकसित हो गई है, जो मुस्लिम बहुल है।

1991 से 2001 के बीच असम में मुसलमानों का अनुपात 15.03 प्रतिशत से बढ़कर 30.92 प्रतिशत हुआ है। इस दशक में असम के बंगाईगांव, धुबरी, कोकराझार, बरपेटा और कछार के इलाकों करीमगंज और हाईलाकंडी, में मुसलमानों की आबादी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

बांग्लादेश से आए अवैध घुसपैठियों की पहचान के लिए वर्ष 1979 में असम में व्यापक विरोध प्रदर्शन हुआ। इसी कारण 1983 के चुनावों का बहिष्कार भी किया गया, क्योंकि बिना किसी पहचान के लाखों बांग्लादेशियों का नाम मतदाता सूची में दर्ज कर लिया गया था।

चुनाव बहिष्कार के कारण केवल 10 प्रतिशत मतदान ही दर्ज हो सका, किंतु विडंबना यह है कि लोकतांत्रिक मूल्यों की

हूजी जैसे आतंकी संगठनों की गतिविधियां इन्हीं बांग्लादेशी घुसपैठियों की मदद से चलने की खुफिया जानकारी होने के बावजूद कुछ सेक्युलर दल बांग्लादेशियों को भारतीय नागरिकता देने की मांग कर रहे हैं। यह कैसी मानसिकता है?

झंडाबरदार होने का दावा करने वाली कांग्रेस पार्टी ने इसे ही पूर्ण जनादेश माना और राज्य में 'चुनी हुई सरकार' का गठन कर लिया गया।

कांग्रेस ने 1983 में अवैध आवर्जन अधिनियम के अधीन बांग्लादेशी घुसपैठियों को राज्य में बसने का अवसर उपलब्ध कराया था। सर्वोच्च न्यायालय ने इस अधिनियम को निरस्त कर अवैध बांग्लादेशियों को राज्य से निकाल बाहर करने का आदेश भी पारित किया है, किंतु कांग्रेसी सरकार पिछवाड़े से इस कानून को लागू रखने पर आमादा है।

केंद्र की तत्कालीन कांग्रेस सरकार द्वारा बनाए गए अवैध परिवर्जन पहचान अधिकरण, अधिनियम, 1983 के अधीन 'अवैध घुसपैठिया' उसे माना गया जो 25 दिसंबर, 1971 'बांग्लादेश के सृजन की तिथि, को या उसके बाद भारत आया हो। इससे स्वतः उन लाखों मुस्लिमों को भारतीय नागरिकता मिल गई जो पूर्वी पाकिस्तान से आए थे। इसके साथ ही बांग्लादेशी घुसपैठियों की पहचान असंभव करने के तमाम प्रावधान भी रखे गए। तबसे सेक्युलरवाद की आड़ में अवैध बांग्लादेशियों की घुसपैठ जारी है और उन्हें देश से बाहर निकालने की राष्ट्रवादी मांग को फौरन सांप्रदायिक रंग देने की कुत्सित राजनीति भी अपने चरम पर है।

पांच राज्यों में होने वाले चुनावों, खासकर उत्तर प्रदेश चुनाव को लेकर सेक्युलर दलों में मुस्लिम वोट बैंक में सेंधमारी की होड़ लगी हुई है। तुष्टीकरण की पुरोधा कांग्रेस मुसलमानों का विश्वास जीतने के लिए वायदों की झड़ी लगाए हुए है तो सपा, बसपा समेत अन्य छिटपुट सेक्युलर दल मौलवियों और इमामों की चौखट पर सजदा कर रहे हैं। यह एक शुभ संकेत है कि इस बार स्वयं मुस्लिम समाज सेक्युलर छलावों से चौकन्ना होने का संदेश दे रहा है।

आजमगढ़ में राहुल गांधी और उनके सेनापति दिग्विजय सिंह के साथ युवा मुस्लिम छात्रों ने जैसा व्यवहार किया उससे इसकी ही पुष्टि होती है। अवैध बांग्लादेशी घुसपैठियों पर राजनीतिक दलों की दो टूक राय मांग कर मुस्लिम समाज सेक्युलर विकृतियों पर लगाम लगाने का सकारात्मक संदेश दे सकता है। ❑

सफलता की राह में कई रोड़े भी

दो भारतीय वैज्ञानिकों ने खाद्य पदार्थों की पोषक ऊर्जा से तैयार की गई अपनी औषधि से सैकड़ों कैंसर रोगियों का इलाज करके दुनिया को चौंका दिया है। वाराणसी के डीएस रिसर्च सेंटर के वैज्ञानिकों ने अपनी औषधि से ठीक हुए चार सौ से अधिक कैंसर रोगियों की सूची पूरे नाम पते सहित विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) को खुद ही भेजकर अपनी औषधि के परिणामों की जांच कराए जाने की मांग की है।

■ निरंकार सिंह

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान और दवाओं ने कई असाध्य रोगों पर विजय प्राप्त कर ली है और कुछ को रोक दिया है, लेकिन खतरनाक कैंसर सभी चिकित्सा विधियों को चकमा देकर आगे बढ़ने वाला रोग साबित हुआ है।

पिछले 20 सालों में दुनिया भर में कैंसर के मरीजों की संख्या दोगुनी हो गई है। भारत में कैंसर दूसरी सबसे बड़ी जानलेवा बीमारी है, जो हर साल 11 फीसदी की दर से बढ़ रही है। वर्ष 2001 में देश में विभिन्न प्रकार के कैंसर के 8 लाख मरीज थे। अब इनकी संख्या 25 लाख के ऊपर पहुंच रही है। हर साल लगभग चार लाख लोग कैंसर के शिकार हो जाते हैं। शरीर में विष बेल की तरह जिस तेजी से फैलने वाली यह बीमारी बढ़ रही है, वहीं इससे लड़ने और इस पर विजय पाने के चिकित्सीय उपाय भी दुनिया भर में हो रहे हैं।

भारत सहित दस देशों के वैज्ञानिकों की अलग अलग टीमें कैंसर के जीनों के रहस्य जानने में जुटी हैं। इस कड़ी में ब्रिटिश टीम स्तन कैंसर, जापानी लीवर कैंसर और भारतीय टीम मुंह के कैंसर के जीनों का कैटलॉग बनाने में जुटी है।

इसके अलावा चीनी वैज्ञानिक पेट तो अमेरिकी मस्तिष्क, गर्भाशय और पेंक्रियाज के कैंसर जीनों को डीकोड कर रहे हैं।

इन वैज्ञानिकों का दावा है कि कैंसर जीनों के संपूर्ण कैटलॉग को तैयार करने में कम से कम पांच साल और लगेंगे। फिलहाल ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने कैंसर की दो सबसे खतरनाक किस्मों – त्वचा और फेफड़ों के जेनेटिक कोड को तोड़ दिया है। इस खोज को कैंसर से लड़ने की दिशा में क्रांतिकारी उपलब्धि माना जा रहा है।

ताजा सफलता कैंब्रिज विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं को मिली है, जिन्होंने त्वचा और फेफड़े के कैंसर के परिणामस्वरूप डीएनए में होने वाले बदलाव का खाका तैयार किया है। कंसटोरियम की ब्रिटिश टीम के नेता मिशेल स्ट्रॉटन के मुताबिक, कैंसर कैटलॉग इस बीमारी के बारे में हमारे समूचे नजरिए को बदल देंगे। सभी कैंसर जीनों को

पिछले 20 सालों में दुनिया भर में कैंसर के मरीजों की संख्या दोगुनी हो गई है। भारत में कैंसर दूसरी सबसे बड़ी जानलेवा बीमारी है, जो हर साल 11 फीसदी की दर से बढ़ रही है। वर्ष 2001 में देश में विभिन्न प्रकार के कैंसर के 8 लाख मरीज थे। अब इनकी संख्या 25 लाख के ऊपर पहुंच रही है। हर साल लगभग चार लाख लोग कैंसर के शिकार हो जाते हैं।

डीकोड करने के बाद ऐसी विशिष्ट दवाएं तैयार कर पाना आसान हो जाएगा।

कैंसर के मोर्चे पर अभी तक कोई कारगर औषधि नहीं बनाई जा सकी है। एक विदेशी कंपनी रॉश ने कैंसर के इलाज के लिए हर्सेप्टिन नामक दवा बनाई है। इसकी एक खुराक की कीमत एक लाख तीस हजार रुपये है। देश के बड़े से बड़े मेडिकल स्टोर पर यह दवा शायद ही मिले, लेकिन कंपनी इसे बेचने के लिए दूसरे रास्तो का सहारा लेती है। हर्सेप्टिन और दूसरी कई महंगी दवाएं परंपरागत तरीके से नहीं बिक रही हैं।

इन्हें बनाने वाली बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियां सीधे मरीजों को ही इनकी बिक्री करती हैं और जरिया या तो डॉक्टर बनते हैं या फिर इन कंपनियों के एजेंट। कैंसर के उपचार में काम आने वाली तकरीबन 90 फीसदी दवाएं आयात की जाती हैं और इसी तरह बेची जाती हैं।

औषधि विभाग के सचिव अशोक कुमार के अनुसार, कुछ खास दवाएं केवल विदेशी कंपनियां ही बनाती हैं। मूल्य नियंत्रण की स्थिति में ये कंपनियां भारतीय बाजार से अपनी दवाएं हटा सकती हैं, जिससे मरीजों का ही नुकसान होगा। चिकित्सा वैज्ञानिकों के प्रयासों के कारण ही 1990 के बाद से मरने वालों की संख्या में 15 फीसदी की कमी आई है। सिर्फ अमेरिका में इसके लिए 900 यौगिक बन रहे हैं। वहां दिया जाने वाला ज्यादातर इलाज और दवाएं अब भारत में उपलब्ध हैं।

आज दिल्ली के एम्स ने अपनी चिकित्सा इकाई में रथ के पास कैंसर के इलाज के सारे उपकरण एक ही छत के नीचे मौजूद हैं। कैंसर की कोशिकाओं में बदलाव जांचने के लिए पीईटी–सीटी स्कैन, सिर्फ कैंसर ग्रस्त स्थान पर ही रेडिएशन के अत्याधुनिक मॉडयुलेटेड रेडिएशन थेरेपी (आइएमआरटी) मशीनें, इलाज के दौरान यदि ट्यूमर सेल्स गतिशील होते हैं तो सही मात्रा में दवा देने वाला उपकरण इमेज गाइडेड रेडियो थेरेपी (आइजीआरटी), प्रकाश की गति से ट्यूमर पर बीम फेंकने के लिए स्टीरियो टैक्टिक, प्रोटॉन और पार्टिकल रेडियो सिस्टम आदि।

लेकिन कैंसर विशेषज्ञों के अनुसार रेडिएशन और कीमोथेरेपी के साथ समस्या यह है कि ये कैंसर को फैलने से तो रोकते हैं, पर स्वस्थ कोशिकाओं को भी क्षति पहुंचाते हैं, जिसके गंभीर दुष्परिणाम हो सकते हैं। दूसरे, कैंसर दवाएं सामान्यतया खून के जरिए दी जाती हैं। इसलिए उनका मामूली अंश ही लक्षित ट्यूमर तक पहुंचता है। अधिक लाभ के लिए दवा की भारी खुराक दी जाती है, लेकिन नई विधियों से अब दवा को ट्यूमर तक सीधे पहुंचाने के प्रयास हो रहे हैं।

सर्जरी के मामले में नए शोधों का दायरा तो और सीमित है। भारत में कैंसर का इलाज उतना ही महंगा है, जितना विदेशों में। लेकिन अच्छी खबर यह है कि भारत में कैंसर के निदान और इलाज के दो बेहतरीन केंद्र समझे जाने वाले दिल्ली के एम्स और मुंबई के टीएमसी में रियायती दरों पर कैंसर की कुछ दवाएं मिलती हैं, लेकिन दो भारतीय वैज्ञानिकों ने खाद्य पदार्थों की पोषक ऊर्जा से तैयार की गई अपनी औषधि से सैकड़ों कैंसर रोगियों का इलाज करके दुनिया को चौंका दिया है। वाराणसी के डीएस रिसर्च सेंटर के वैज्ञानिकों ने अपनी औषधि से ठीक हुए चार सौ से अधिक कैंसर रोगियों की सूची पूरे नाम पते सहित विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) को खुद ही भेजकर अपनी औषधि के परिणामों की जांच कराए जाने की मांग की है। डब्ल्यूएचओ को दिए गए पत्र में एक्यूट ल्युकेमिया (ब्लड कैंसर), लीवर और गाल ब्लैडर, पैंक्रियाज, ब्रेन, यूरिनरी ब्लैडर और प्रोस्टेट, किडनी, बोन, ब्रेस्ट, रेक्टम, कोलोन जैसे कैंसर रोगियों के ठीक किए जाने के चिकित्सीय प्रमाण–पत्रों के साथ संपूर्ण ब्यौरा दिया गया है।

इस बात के पुख्ता प्रमाण हैं कि ये व्यक्ति कैंसर के रोगी थे और उनका इलाज देश के प्रतिष्ठित अस्पतालों में हुआ। डाक्टरों ने उनके इलाज की सारी संभावनाओं के आजमाने के बाद निराश होकर उस स्थिति में घर जाने के लिए छोड़ दिया था। जब यह आभास हो गया कि कैंसर अत्यन्त उग्र हो गया है और उनकी स्वास्थ्य स्थिति इतनी छिन्न–भिन्न हो गई है कि वे मुश्किल से कुछ दिन या कुछ हफ्ते ही और जीवित रह सकेंगे। सेंटर के डॉक्टरों ने ऐसे मरणासन्न रोगियों पर अपनी औषधि का परीक्षण किया और उन्हें सफलता मिली, लेकिन यह औषधि भी बाजार में कहीं उपलब्ध नहीं है।

डीएस रिसर्च सेंटर के वैज्ञानिकों ने डब्ल्यूएचओ और भारत सरकार से इस औषधि के परिणामों की जांच कराकर चिकित्सा की वर्तमान धारा में सम्मिलित किए जाने की मांग की है ताकि लाखों कैंसर रोगियों को मौत से बचाया जा सके। पर ऐसा लगता है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन और बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियां नहीं चाहती हैं कि कैंसर की कोई सस्ती दवा बाजार में आए, जो उनके वर्चस्व को चुनौती दे। बहरहाल, इन औषधियों से कैंसर पर लगाम लग गई है। ❑

गंगा संरक्षण पर और कितनी बलि

गंगा सिर्फ नदी नहीं है। दुनिया में भारत की अस्मिता का प्रतीक वह पहले ही थी, राष्ट्रीय नदी बनकर अब यह सरकार का दायित्व भी बन गई है। क्या सरकार ने यह दायित्व निभाया? नहीं। यदि केंद्र व गंगा की प्रादेशिक सरकारों ने अपना दायित्व निभाया होता, तो अपनी मां की रक्षा के लिए आत्मबलिदान के रास्ते पर चलने को विवश न होती गंगा संतानें।

■ अरुण तिवारी

जिसका डर था, वही हुआ। गंगा का प्रदूषण, कटान और बाढ़ हर वर्ष जाने कितनी बलि लेता ही है। किंतु गंगा रक्षा के लिए आत्मबलिदान को तत्पर गंगा संतानों की सूची भी बढ़ती जा रही है। गंगा एक्सप्रेस–वे भूमि अधिग्रहण रायबरेली, प्रतापगढ़ और मिर्जापुर में पहले ही कई जाने ले चुका है। मंदाकिनी संरक्षण के लिए सुशीला भंडारी और जगमोहन सिंह पर लंबी जेल यात्रा का जुल्म ढहाने वालों के चेहरे उत्तराखंड अभी भूला नहीं है।

बनारस के शमशान घाट पर एक जटिल संन्यासी न मालूम कितने समय से एकांत अनशन कर धीरे–धीरे आत्मबलिदान की ओर बढ़ रहा है। गंगा रक्षा के लिए दिवंगत युवा स्वामी निगमानंद की राख भी अभी ठंडी भी नहीं हुई है कि पांच और गंगापुत्रों ने अपने बलिदान का ऐलान कर दिया है। वह भी दो गंगा प्रदेशों में ऐन चुनाव के वक्त। इन पांच में गंगा जल बिरादरी प्रमुख और राष्ट्रीय नदी गंगा बेसिन के सदस्य राजेंद्र सिंह के शामिल होने से कई तरह की अटकलें तेज हो गई हैं। गंगा सेवा अभियानम् के भारत प्रमुख के रूप में स्वामी ज्ञानस्वरूप 'सानंद' के नए नाम से जाने जानेवाले प्रो. जीडी अग्रवाल ने इलाहाबाद के माघ मेले में अनशन का आगाज कर दिया है।

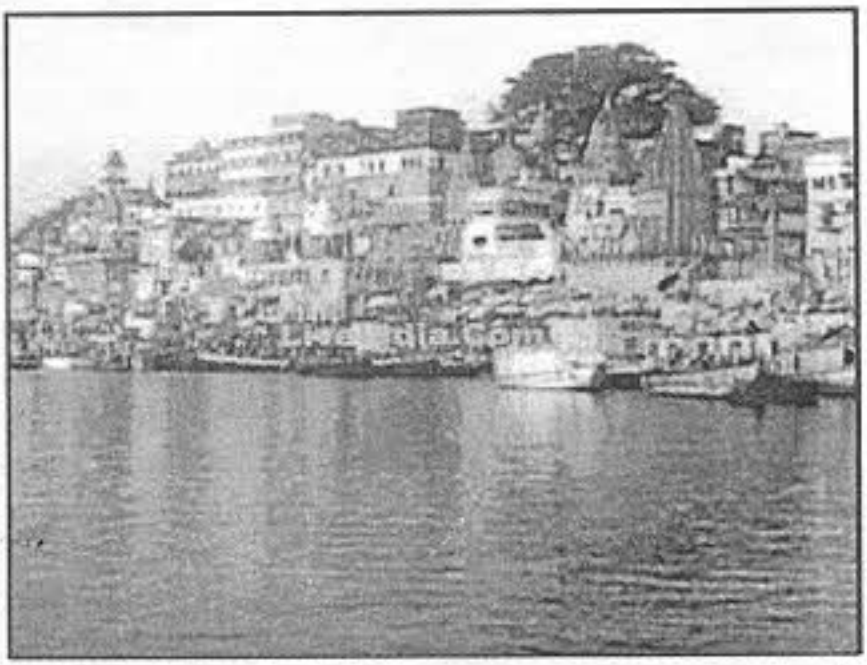

केंद्र में बैठी सरकार की संवेदनशीलता और नीयत एक बार फिर दाव पर है, उससे भी आगे बढ़कर सीधे प्रधानमंत्री महोदय की। अब खुला पत्र लिखकर सीधे प्रधानमंत्री से पूछा गया है कि गंगा की सुरक्षा के लिए उन्हें अभी और कितने बलिदानों की दरकार है ? गंगा के राष्ट्रीय नदी घोषित होने पर जो तमाम आशंकाएं जाहिर की गई थीं, वे अब सच हो रही हैं। जो तमाम सावधानियां और सतर्कताएं बरतने को आगाह किया गया था, उन्हें नजरअंदाज करने के नतीजे अब सामने आ रहे हैं।

उनके पूर्व अनशन ने बड़े नतीजे दिए थे। केंद्र में बैठी सरकार की संवेदनशीलता और नीयत एक बार फिर दाव पर है, उससे भी आगे बढ़कर सीधे प्रधानमंत्री महोदय की। अब खुला पत्र लिखकर सीधे प्रधानमंत्री से पूछा गया है कि गंगा की सुरक्षा के लिए उन्हें अभी और कितने बलिदानों की दरकार है ? गंगा के राष्ट्रीय नदी घोषित होने पर जो तमाम आशकाएं जाहिर की गई थीं, वे अब सच हो रही हैं। जो तमाम सावधानियां और सतर्कताएं बरतने को आगाह किया गया था, उन्हें नजरअंदाज करने के नतीजे अब सामने आ रहे हैं। राष्ट्रीय नदी गंगा बेसिन प्राधिकरण को गठित हुए चार वर्ष पूरे होने को हैं। पर और तो और प्राधिकरण के विशेषज्ञ

सदस्यों ने ही इसे फेल घोषित कर दिया है।

इलाहाबाद हाईकोर्ट ने गंगा एक्सप्रेस–वे के मामले में काम रोककर अंतिम निर्णय प्राधिकरण पर ही छोड़ा था। मायावती सरकार ने जेपी समूह को बैंक गारंटी भी लौटा दी है कि गंगा एक्सप्रेस वे के भविष्य को लेकर अटकलों को विराम मिले।

सच कहें तो गंगा को राष्ट्रीय नदी प्रतीक घोषित करने की मांग के पीछे का जो मंतव्य था, प्राधिकरण ने उस पर राख डाल दी है। गंगा सेवा अभियानम् ने प्रधानमंत्री को खुला पत्र लिखकर आरोप लगाया है कि अब तो वे पत्रों के जवाब भी नहीं मिलते। प्राधिकरण को पर्यावरण मंत्रालय की अधीन रखने पर आपत्ति जताई गई है।

संभवतः जयराम रमेश की व्यक्तिगत सक्रियता और संवेदनशीलता के कारण उम्मीदों के दीये में कुछ तेल बचा था। कहते हैं कि जयंती नटराजन तो बाती ही चुरा ले गई। गंगा सेवा अभियानम् ने उन पर बद्रीनाथ धाम के नीचे अलकनंदा पर व्यक्तिगत हस्तक्षेप कर एक परियोजना शुरू कराने का आक्षेप लगाया है। अभियानम् ने संवैधानिक तौर पर गंगा का यथोचित सम्मान सुनिश्चित करने के लिए संसद में सशक्त बिल पारित करने की मांग की है।

उत्तराखंड में भागीरथी, अलकनंदा, मंदाकिनी, नंदाकिनी, पिंडर और विष्णु गंगा पर सभी परियोजनाएं निरस्तद्धबंद हों। गंगा व उनमें मिलने वाले नदी–नालों को प्रदूषित करने वाले पेपर, चमड़ा आदि उद्योगों को गंगा से 50 किलोमीटर दूर खदेड़ा जाए।

नरोरा से प्रयाग तक हमेशा न्यूनतम 100 घनमीटर प्रति सेकेंड प्रवाह तय हो। कुंभ, माघ मेले के अलावा अन्य पर्व पर 200 घनमीटर प्रति सेंकेड के प्रवाह की मांग की गई है। औपचारिक रूप से सबसे पहले जल बिरादरी द्वारा 26 जुलाई, 2008 को नई दिल्ली के प्रेस क्लब में गंगा को राष्ट्रीय नदी प्रतीक घोषित करने की मांग की गई थी।

सरकार ने उसे राष्ट्रीय नदी घोषित किया, प्रतीक नहीं। उसी समय आगाह किया गया था कि सरकार का संकल्प अधूरा है। प्रतीक अधिनियम के तहत लाए बगैर गंगा के प्रति राष्ट्रोचित सम्मान और व्यवहार का अनुशासन सुनिश्चित करना संभव नहीं है। यदि आगे भी गंगा राज्य और केंद्र के बीच की राजनीति में फंसी रही, तो यह घोषणा बेकार ही जाएगी। गंगा कार्ययोजना की तर्ज पर जन–सहभागिता सुनिश्चित करने के हवाई प्रयास ही हुए, तो सफलता संदिग्ध ही रहेगी।

जो डर पहले से था, वह सच निकला। प्रदूषण नियंत्रण के नियमों का पूरी कड़ाई से पालन करना सुनिश्चित करने के बजाय यदि जोर शोधन के लिए मशीनें खरीदने और ढांचे बनाने के उपायों पर ही रहा, तो उन सब पर काला धब्बा लगेगा, जो गंगा के राष्ट्रीय नदी घोषित होने करने की मांग की है। खासकर उन पर, जो समाज व प्रकृति के प्रतिनिधि के रूप में प्राधिकरण के सदस्य बने हैं।

कालांतर में राजेंद्र सिंह की पहल पर गठित गंगा ज्ञान आयोग द्वारा जारी रिपोर्ट में साफ था कि पहले मैला करना और फिर उसे साफ करना नासमझी है। उचित तकनीक, बिजली तथा सदाचार के अभाव में शोधन की वर्तमान लागू प्रणाली फेल साबित हुई है। इसलिए गंगा में आने वाले शोधित–अशोधित अवजल को गंगा व उसमें मिलने वालों नदी–नालों से दूर हटाया जाना जरूरी है। रिवर को सीवर से अलग रखने को सिद्धांततः मंजूर किया जाए। घोषणा से पहले गंगा लोकादेश, घोषणा के बाद गंगा मांग पत्र, गंगा जनादेश, गंगा नदी नीति जैसे तमाम दस्तावेजों व तमाम संगठनों द्वारा भेजे गए पत्रों के जरिए सरकार को आगाह किया गया कि सरकार विश्व बैंक के चक्कर में न पड़े।

गंगा को अविरल–निर्मल बनाने के लिए धन से ज्यादा धुन चाहिए। गंगा में मिलने वाली छोटी–छोटी धाराओं का प्रवाह चाहिए। नदी के भीतर जीव चाहिए। नदी तट पर हरियाली चाहिए। नदी भूमि को अतिक्रमणमुक्त बनाने और हरित क्षेत्र के रूप में संरक्षित व विकसित करने के लिए विशेष रिवर जोन का कानूनी दर्जा चाहिए।

इसके लिए बजट के बजाय ईमानदार नीति, नीयत व निगरानी की जरूरत है। सरकार नहीं मानी। नतीजा सामने है। नदी संरक्षण का बजट बढ़ता जा रहा है, साथ–साथ सूखने वाली छोटी नदियों की संख्या व प्रदूषण की मात्रा भी। गंगा सिर्फ नदी नहीं है। दुनिया में भारत की अस्मिता का प्रतीक वह पहले ही थी, राष्ट्रीय नदी बनकर अब यह सरकार का दायित्व भी बन गई है। क्या सरकार ने यह दायित्व निभाया? नहीं। यदि केंद्र व गंगा की प्रादेशिक सरकारों ने अपना दायित्व निभाया होता, तो अपनी मां की रक्षा के लिए आत्मबलिदान के रास्ते पर चलने को विवश न होती गंगा संतानें। ठीकरा सरकारों के ही सिर है। वे ही बताएं कि गंगा संरक्षण पर कितनी बलि और?